ओ३म्

आज-कल

पताका गीत

जिसकी चरण धूलि ने पाला,
जहां किया विश्राम प्रयाण।
उस प्यारी कुलमाता को है,
मेरा बारम्बार प्रणाम ॥

—

बन पर्वत में नदी-नीर में,
माता! जो पाया सन्देश।
तेरी पुण्य पताका लेकर,
फैला दूंगा देश-विदेश।

ओ३म्।

आचार्य रामदेव जी का
गुरुकुल पुत्रों को
सन्देश

प्रिय पुत्र वीरभद्र।

सप्रेम आशीष

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे तो एक ही सन्देश आता है, और वह फिर से लिख देता हूँ। गुरुकुल का उद्देश्य सत्य सनातन नित्य वैदिक धर्म का विशुद्ध सर्वोत्तम सार्वभौमिक रूप में प्रसार, के अनुकूल रहना और ब्रह्मचर्य; प्राचीन और नवीन ज्ञान के अद्भुत मिश्रण और भारतीय संस्कृति का क्रियात्मिक प्रचार है। यह सब कुछ नहीं हो सकता जबतक कि गुरुकुल स्वाधीन न रहे, और— जिस शिक्षा प्रणाली के घोर प्रतिवाद के रूप में यह खोला गया था, उसी की शरण सीधे या उल्टे रूप में न लें। ऐसा करना उसके लिए अपमान है, जिससे मेरी सम्मति में आत्म-बलिदान हजार दर्जे अच्छा है। यद्यपि मेरी सम्मति आचार्य 'इ" से पूर्णतया मिलती है कि सरकारी विश्वविद्यालय भूखों, अकालमरों और बेकारों की संख्या बढ़ाकर देश की आर्थिक समस्या को अधिक

आजकल

विकट ही बना रहे हैं और रोटी के प्रश्न का हल शिक्षित लोगों के लिए शिल्पों का सीखना ही है। तथापि मैं यह भी कहता हूँ कि यदि ऐसे कुल-पुत्र हों जिनको दूसरी प्रकार का भ्रम हो और वह जब तक अपनी माता के बन्धन छूटते नहीं तब तक भी सार्वजनिक निर्धनता के जीवन की अपेक्षा बन्धन में डालने वालों के बूट चाटकर धनी बनना चाहते हैं, तो उनको यह चाहिए कि माता को कलंकित न करें और उसका सिर झुकने न दें। वह स्वयं माता को नमस्कार करके उससे अलग हो जावें। गुरुकुल के अन्दर प्रताप की स्पिरिट रही है, उसकी गर्दन टूट चाहे जावे किन्तु झुके नहीं, कुलपिता ने मेरे सन्मुख बड़े 2 अधिकारियों को कहा कि गुरुकुल किसी की शरण में जावेगा नहीं किन्तु यदि उसकी शरण कोई श्रद्धा से लेना चाहेगा, तो देगा अवश्य। यह सन्देश लिखते समय कुलपिता की विशाल मूर्ति मेरे सन्मुख खड़ी है और पूछ रही है "पुत्र! गुरुकुल खतरे में है, उसके मरने हैं किन्तु झुकने न दो और आर्यसमाज ही नहीं किन्तु आर्य जनता को कह दो कि मैं उनके लिए जिया और उनके लिए मरा। मेरी उनसे यही याचना है कि वह किसी को भी मेरी स्मृति के साथ विद्रोह न करने दें। जो गुरुकुल के न थे और न हैं और जिन्होंने गुरुकुल का कुछ खाया नहीं उनको बिगाड़ने भी मत देना। गुरुकुल के पुत्रों के द्वारा यह संदेश मैं आर्य-जनता तक पहुंचाना चाहता हूँ। मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब है किन्तु आत्मा शान्ति और आनन्द में विश्राम करने के लिए जा रही है। मेरी चिन्ता न करें और यदि करते हैं तो अपना आचरण उन्नत रखकर देखो कि उसके समाचार मेरे दिल को ठेस न लगावें।

ह. प्रेम पात्र पिता

रामदेव

आमुख

इस की मेरी मान्यता है
भीरु का मन मरने से पूर्व
बार तो थरथर काँप जाता
है किन्तु वीर के सामने अपना
कर्तव्य पथ होता है उसने
या तो शत्रु को मार कर उस
पर विजय प्राप्त करनी होती है
या अपना ही अस्तित्व मिटा
देना होता है। आज हम
सब कुलपुत्र अपनी माँ की
२१वीं वर्षगांठ मनाने
जा रहे हैं हमने सोचना
है कि हम सब वीर योद्धा
की तरह से अपने कर्तव्य
पथ पर डटे रहे हैं या
नहीं? अपने कुलमाता के
प्रति कर्तव्य को हमने नि-
अपनी निष्ठा की शक्ति
निभाया है या नहीं? या आज
केवल सब भीरु सैनिक की
तरह पद पद पर पीछे ही हटते
गये हैं। अपने आपको मिल

कर इस गम्भीर समस्या पर
विचार करना, अपनी त्रुटियों
को कमजोरियों को अपने
में से निकाल कर दूर कर देना
ही वास्तव में आज के दिन का
मुख्य उद्देश्य है। इस पुस्तिका
ने जिन विषम परिस्थितियों
में इस पुस्तिका के जीवन का
आरोपण किया था तब यह
एक मात्र परीक्षण था राष्ट्रीय
शिक्षा का, राष्ट्रीय सभ्यता का
और राष्ट्रीय संस्कृति का।
किन्तु आज देश का बच्चा
बच्चा जान गया है कि देश
की राष्ट्रभाषा हिन्दी है हमारी

सभ्यता और संस्कृति वही
पुरानी ऋषिमुनियों की बताई
सभ्यता और संस्कृति ही है।
यही शायद, शायद क्यों अवश्य
ही इस कुल के मूलमंत्र रहे थे
इसके जीवनाधार हैं। आओ
भाइयो! हम सब मिलकर इस
शुभ पर्व पर विचार करें कि
हम गुरुकुल के इन मूल्य
तत्वों पर कहाँ तक अमल
किया है। हम की सफलता से
गुरुकुल के पुत्रों को कहाँ तक
उत्तम नागरिक बनाया है। यदि हम
ने इसे में देखें तो कुछ नहीं किया
तब हम कुल मां के सुपुत्र
कहलाने के योग्य नहीं हो सकते

शहीदों की होली

सींच चुके कितनी ही बार वीर-लोक सारा
खून से धरा को खोखला ही कर डाला है।
भीग उठा एक २ कोना भूमि-अंचल का
रक्त २ से ही अन्तरिक्ष भर डाला है॥
शूलियों का शूल बन फूल पड़ जाता जब
खून सने फूलों की बनाता एक माला है।
दिल से लगाने इसे छाती खोल बैठा रोज़
पृथिवी का कण एक २ मतवाला है॥

पापियों के पाप सुन दिल कांप उठते हैं
साथ २ कोप चिनगारियां छुड़ाते हैं।
व्योम के सितारे समझाते बार २ उसे
आंख झपकाते भी अंगारे बरसाते हैं॥

‘खून की परीक्षा अब हो ली जय २ माता,

कहते कहते ही होलियों में जल जाते हैं।

जिस ने बुझाई हैं चिताग्नि ऐसी राख से भी

भक्त लोग हृदयों में स्मृति सुलगाते हैं॥

[illegible]

मेरे जीवन के अतीत पर विस्मृति का पट डाल ।
तेरी पूजा को मन्दिर में
माँ! ज्यों ही आता हूँ,
अपने हृदयाञ्चल को निर्मल
उज्ज्वलतर पाता हूँ ।
किन्तु विवश हूँ तनिक कालिमा,
पहले की जो लगी यहाँ माँ!
जितना हृत्पट को धोता हूँ,
हा! दिखती उतनी वह भी गहरी तथा विशाल ।१।

स्मृतियाँ लहरों सी आती हैं
फिर फिर मुझको उकसाती हैं;
किन्तु सभी को ठुकरा कर कर मैं
मदिरा की मस्ती लाकर मैं
ज्यों ही अपने गाने लगता
निद्रा से तत्क्षण हूँ जगता;
सभी झनझना उठती तारें
और बेसुरा हो जाता है मेरा सब सुर - ताल ।2।

(अनुवाद) सत्यपाल.

भागामल ८

श्रद्धाञ्जलि

श्री धर्मदेवजी।

जननी प्रणाम तुम्हें सदा, होवे सुमंगलकारिणी।
अति दिव्य-ज्ञान-सुधा पिला तू सर्वविध भयहारिणी॥१॥

तेरी सुपावन गोद में पलना परम सौभाग्य है।
शुभ आधिभौतिक कर तू दिव्य सुख की दायिनी॥२॥

जावें कहीं पर याद तेरी मातु नित आती रहे।
है गोद तेरी वह मधुर चिन्तादि कष्ट निवारिणी॥३॥

था वास्तविक वह स्वर्ग सुख जो पाया तेरी क्रोड़ में।
है धन्य धन्य सुधन्य जननी तू सकल हितकारिणी॥४॥

है कामना यह ही सदा तव नाम उज्ज्वल हम करें।
तू शक्ति दे हमको अमित हे दिव्य बल संचारिणी॥५॥

श्री धर्मदेव जी

लेखक
सन्तोष

प्रण !

श्री निधि !

मां !

क्या कहती हो
मिट न सकेगी ?
तेरी चिन्ता ज्वाला
मैं सत्य निष्ठ
यह पी जाऊँगा
प्याला भरकर हाला
यदि न मिटा यह चिन्ता
ज्वाला का तेरा संसार
बहने देना तूने उसपर
भरा हुआ सा जगत चाहता
प्राणी प्राणी का संहार
क्षमा न करना अब की बार !

— —

आमुख

माँ !

मैं जूझ पड़ा हूँ
पीठ न दूँगा
कर में लेकर असिवाला
मार काट कर
शत्रु शिविर को
पहिना कर बाणों की माला
पूर्ण करूँगा
प्रण अपना पर
पहना दूँगा तुम को वरमाला
मिटीं चाहतीं
निश्चय ही अब
तेरी चिन्ता ज्वाला !!

—

श्री निधि ।

प्रकृति का सौन्दर्य

ले० श्री सुधाकर जी

वसन्त ऋतु के प्रातः काल के सुहावने समय में प्रकृति अपने उत्कृष्ट रूप से संसार में अवतरित होती है। प्रकृति की सारी सेज उसकी सम्पूर्ण देह ही मानो नूतन सुन्दर एवं प्रकाशित पल्लवों से बनी होती है। वस्तुतः प्रकृति सदा ही नूतन भावों को भरने वाली एवं नित्य नवीन सौन्दर्य को धारण करने वाली है। पश्चिमी सभ्यताभिमानी संस्कृत लोगो! तुम लोग प्रकृति की अवहेलना करते हो परन्तु जरा आँख खोल कर देखोगे तो मालूम पड़ेगा कि यह विश्व ब्रह्माण्ड प्रकृति-परब्रह्म की विलक्षण रचना है। यह एक महाशक्ति के रूप से सर्वत्र विद्यमान है। एक छोटे से परमाणु से लेकर चन्द्र सूर्य ग्रह भूमी पर्वत आदि सर्वत्र ही परमेश्वर की असीम दया अनन्त ज्ञान एवं अगाध महिमा इस ध्वनि से उद्घोषित हो रही है।

संसार की कृत्रिम रचना जाल की चहार दिवारी में फँसे मनुष्यो! इस बात को अच्छी तरह से हृदयङ्गम कर लो। याद रखना कि जब कभी तुम्हारा चित्त निरुत्साहित हो तथा जब तुम्हें हृदय के अन्दर अशान्ति का अनुभव हो तो उत्साह और शान्ति की प्राप्ति के लिये जगन्माता की परम पावन शान्तिमयी गोद में बैठना। फिर देखना कि धीरे २ उस मातृशक्ति के प्रति तुम्हारे विचार इतना बढ़ जावेगा कि तुम्हारा दिल स्वयं ही किसी अज्ञात अन्तः निहित शक्ति द्वारा जगन्मातः की गोद में बैठने को लालायित हो जायगा। जरा देखो तो सही छोटे २ बच्चे हँसते २ शोर गुल मचाते २ प्रकृति माता की गोद में आनन्द खेलते हैं। अपने घर का आनन्द वे यहीं पर ले आते हैं उनके पिता को आशीर्वाद

माता का स्नेह घर से बाहर निकल कर प्रकृति के खुले हुए आंगन में विशाल आकाश की छत छाया में भी प्राप्त कर लेता है। प्रकृति की जलराशि में लहर लहर होकर वे मानो उसमें सम्पूर्ण स्नेह को मिला देते हैं। जिस चाह से वे कुसुम कुसुम जलराशि को वश में कर लेते हैं और अपने छोटे २ कोमल हाथों से उसकी देही पर रहु २ थपकियां देकर पल्प जोर से ठेल मानो झुलाया चाहते हैं। निर्मल हृदय से मैं २ उसके मानो बातें करते हैं। यथा प्रकृति देवी अपने इस विशाल रत्नराशियों से भिन्न भिन्न समयों में अपने लोगों को जो भिन्न २ उपहार देती है उनमें से बसन्त ऋतु का "सुन्दर फूल" भी है। बाह्य प्रकृति में यदि पूर्ण चन्द्र सागर को उल्लसित करता है तो अन्तः प्रकृति में बसन्त ऋतु के "सुन्दर फूल" हृदय सागर में आनन्द की उत्ताल तरंगों को उद्भावित करते हैं। किसी भावुक कवि ने कहा है कि — "मैं तो सर्वत्र ही 'देव' को देखता हूं"। पाषाण में देव सुषुप्ति की अवस्था में है। वनस्पतियों में वह श्वासोच्छ्वास लेता है। प्राणियों में वह गति करता है। तथा मनुष्यों में वह पूर्ण जीवन में उद्भावित होता है। बसन्त ऋतु में प्रातः काल के भ्रमण में प्रकृति सुन्दर फूल द्वारा उसी प्रकार नीति का उपदेश करती है जिस प्रकार वह शुक्ल पक्ष में शुभ्र चन्द्र प्रकाश द्वारा। ग्रीष्म ऋतु में निर्मल हृदय सुन्दर प्रकुमारिका के समान पवित्र व स्वच्छ नदी के तथा मंगल अनवरत कलरव करने वाले झरने के द्वारा नीति उपदेश करती है। क्या

आपने कभी सोचा है कि वह नदी बिना विश्राम किये बिना किसी कष्ट के मानो आनन्द में लीन हुवा जल की धारा बहा रहा है। सच पूछो तो नदी की कलकल ध्वनि सुनकर मेरे प्राण व्याकुल हो जाते हैं तथा अन्तः के गम्भीरतम प्रदेश से एक उच्च आकांक्षा उद्भूत हो-जाती है। न मालूम कि किस अनादि-काल से रात दिन का, सुख-दुःख का, आदर सत्कार बिना ख्याल किये साम्य भाव से सार गति से बह रहा है। हे सभ्यताभिमानी लोगो तुमको यदि कभी मौका मिले तो वहां नदी के समीप जाकर श्रद्धा भक्ति से इसके समीप बैठकर इसके अनिर्वचनीय या सुस्पष्ट कर्म योग के धार्मिक उपदेश को सुनो। प्रकृति - प्रकृति देवी अपने देव के लिये सुन्दर फूल का उपहार भेंट करती है। पर क्या वह ~~सौन्दर्य~~ इस सुन्दर फूल को वास्तविक यदि वह इस के उत्पादक वृक्ष के मूल को उचित खाद व पेय द्वारा न सींचती। परन्तु शोक है हमारे हिन्दु समाज की अवस्था कितनी प्रतिकूल है। हम लोग राष्ट्र वृक्ष के फूल फल द्विज वर्णों को तो बहुत मानते हैं पर स्त्री बालक तथा शूद्रों की जो इस राष्ट्र वृक्ष की जड़ हैं कुछ परवाह नहीं करते। हे हिन्दू समाज यदि तेरे अपने राष्ट्र वृक्ष से सुन्दर एवं मधुर फल फूल का निर्माण करना है तो इन पर अधिक खर्च न कर, अपितु मूलभूत स्त्री बालक तथा शूद्रों पर ध्यान दे फिर देखना स्वयं ही राष्ट्र वृक्ष पर सुन्दर फूलों का निर्माण होगा।

फूल सुन्दर क्यों है? वस्तुतः फूल सच्चे अर्थों में सुन्दर हैं। बाह्य रंग रूप ही सुन्दरता नहीं है, वास्तविक सुन्दरता तो पवित्रता में है

'सुन्दर' में जो आकर्षण है वह उसकी पवित्रता में है, केवल सुन्दर रंग रूप होने से आदमी सुन्दर नहीं हो जाता बिना आन्तरिक पवित्रता के सच्चे अर्थों में मनुष्य सुन्दर नहीं कहा जा सकता। केवल बाह्य सुन्दरता तो एक पाषाण मूर्ति में भी हो सकती है। बाह्य सुन्दरता यदि आन्तरिक सौन्दर्य से रहित हो तो वह कुत्सित है, भयंकर है। उससे तो वह कुरूपता ही अच्छी जो अन्दर से कलुषित तो नहीं है। फूल सुन्दर होता है क्योंकि वह पवित्र होता है। फूल ने तपस्या द्वारा अपने को सुन्दर बनाया है। [illegible] विकल होकर एक २ आता है एक मन से सूर्य की किरणों को अपने में खींच लिया है। सूर्य की किरणें, उस प्रकाशमान देव की तपोराशि का एक अंश फूल में घुल कर उसको सुन्दर बनाता है। वस्तुतः सुन्दरता के लिये पवित्रता की आवश्यकता है। जो तपस्या से उद्भासित है।

क्या किसी ने कभी सोचा है कि फूल दूसरों को क्यों सुन्दर लगता है। सफेद फूल की सुन्दरता का कारण उसका उस सभी संपत्ति को जो उसे अपने स्वामी सूर्य से मिली है अर्थात् सातों किरणों का त्याग कर देना है। इसी प्रकार लाल का लाल रंग को त्याग करने के कारण इत्यादि, वस्तुतः त्याग ही आदमी को दूसरों की नजर में सुन्दर शुभ्र बनाता है। इसके विपरीत लोभ से सब कुछ संग्रह कर लेने से आदमी काला कलूटा ही रह जाता है।

अहा! कैसा करुण दृश्य है। जो फूल कल अपने पूर्ण सौन्दर्य को लेकर खिला हुआ था वही आज मुरझा गया है। सूख कर निस्तेज हो गया है।

पर प्रकृति की अद्भुत रचना को देखो नये २ कुसुम अपने पूर्ण यौवन में विकसित हैं। ईश्वर इतना असावधान कोई हो? हे ईश्वर- बार म्बार ~~उनके~~ यौवन को इस संसार के सिंहासन पर बिठाता है। क्या इसका कोई अर्थ नहीं। हां है। इसका अर्थ है कि ईश्वर नहीं चाहता कि उसकी सृष्टि अतीत के साथ सम्बद्ध होकर पीछे हट जावे। अनन्त को व्यक्त करने ~~का~~ का कार्य रुक जावेगा। यदि समय पर नवीन शक्तियां नये तौर पर उस कार्य को न उठावें और बनी हुई नींव पर नयी इमारतें न खड़ी करें। यही कारण है कि यह जल जलों की तरह शूर ~~[illegible]~~ विलीन हो जाते हैं। और प्रात: काल के प्रकाश में विकसित होने वाली कुसुम कलिका की भांति नवयुवक संसार के क्रोड़ में खिल उठते हैं।

और देखना, हे दिल लुभाने वाले सुन्दर फूल मत समझ कि तितलियाँ जो पंख फड़फड़ा कर तेरी परिक्रमा कर रही हैं अनन्त काल तक तेरे इसी सौन्दर्य का गीत गाती जावेंगी नहीं; ये तो मधु के भूखों की साथी हैं। तेरी नहीं बाह्य रंग रूप लोलुप तितलियों के बुलावे में आकर उनके जाल में फंसकर जो प्रेम के नाम पर लालसा की आराधना करते हैं। स्नेह के पर्दे में स्वार्थ की पूजा किया करते हैं। जिनकी आंखें केवल रूप ही का रस पीना चाहती हैं। हृदय का छिपा सौन्दर्य नहीं निरखती; हे मानवीय सुन्दर फूल देखना. अपना सर्व-नाश न कर बैठना।

अरे ओ निर्भागी देखना यह अनर्थ न कर बैठना रूपमोले आदिकाल के ज्ञान सुन्दर फूल पर अत्याचार न कर बैठना याद रखना रसिक अपने पास रखने से कोई चीज़ अपनी नहीं हो सकती और न

अपनी चीज़ हमेशा कोई अपने पास रख ही सकता है। जिसे हम अपनी समझते हैं वह दूसरों की भी हो सकती है। होती है, क्योंकि है। फिर हमको क्या अधिकार है कि उसे हम जबर्दस्ती अपनी ही सीमा में बन्द रखने का साहस करें। इसमें मन को हरने वाली आकांक्षायें आग रहती हैं। किन्तु समझ को

कर्तव्य के नाते उसे पृथक् होते हुए भी अपना अपना समझते रहने वाली वृत्ति में सन्तोष-शीलता। हमारी बहुत सी चीजें ऐसी भी होती हैं जिनको किसी तरह भी हम अपने में लाने के अधिकारी नहीं। वे हमारी वासना की प्यास नहीं बुझा सकतीं, किन्तु भक्ति की भूख जगाये रखती हैं।

आचार्य के लिये उपदेश

ले. आचार्य देवशर्मा जी.

शब्दार्थ - (राजा) राजा (ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य के तप के द्वारा (राष्ट्रं) राष्ट्र की (वि रक्षति) ठीक ठीक रक्षा करता है। और (आचार्य) आचार्य (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य से ही (ब्रह्मचारिणं) ब्रह्मचारी को (इच्छते) चाहता है।

जो राजा अजितेन्द्रिय, विलासी होता है उसके दुर्बल हाथों में राज्य की बागडोर सम्भली नहीं रह सकती। क्यों कि जिस सरकार के अधिकारी व कर्मचारी विषयलोलुप आचारहीन और लम्पट होते हैं उसकी प्रजा अरक्षित होजाती है एवं पीड़ित और दु:खी होती हुई वह प्रजा उस सरकार को शाप देती रहती है। ऐसी सरकार शीघ्र ही च्युत होजाती है। अत: हे राजन् यदि तुम सचमुच राज्य करना चाहते हो, प्रजा का ठीक रक्षण करना चाहते हो, प्रजा को धनसम्पन्न ज्ञानविकसित और उन्नत बनाना चाहते हो तो तुम ब्रह्मचारी बनो और तपस्वी बनो। तुम अपने जीवन को सदा संयमी और तेजस्वी बनाओ और अपने आप को जितेन्द्रिय, कष्टसहिष्णु और ईश्वरपरायण बनाओ।

इसी तरह जो आचार्य शिष्य को शिक्षित करना चाहता है, उसे ब्रह्मचारी रख कर वेदज्ञान देना चाहता

आजकल

है उसे स्वयं ब्रह्मचारी होना चाहिये, बड़ा उन्नत ब्रह्मचारी होना चाहिये। नहीं तो उसे ब्रह्मचारियों की इच्छा भी नहीं करनी चाहिये। वास्तव में यह आचार्य का अपना ब्रह्मचर्य-मय और शान्तिप्राप्त जीवन ही होता है जिसके कारण वह इच्छा करता है कि और भी बहुत लोग ब्रह्मचारी बनें, किन्तु जितने ब्रह्मचारी बनें उतने थोड़े हैं। सच्चा आचार्य अपने ब्रह्मचर्य के बल के द्वारा ही ब्रह्मचारियों को आकृष्ट करता है, उन पर शासन करता है, उन्हें अपने वश में रखता है, अपने से जोड़े रखता है और उन्हें ब्रह्मामृत पिलाता हुआ परिपुष्ट करता रहता है।

एवं कोई भी शासन—राज्यशासन का शिक्षाशासन, कालिज का शासन या बालकों का शासन ब्रह्मचर्य के बिना नहीं चल सकता।

ब्रह्मचारी की प्रार्थना

प्रो. श्री आचार्य "अभय"

अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु ॥

— अथ० १९.६४.१ ॥

__शब्दार्थ__ - (बृहते) बहुत बड़े, परम (जातवेदसे) ज्ञानमात्र के जानने वाले, ज्ञानपुञ्ज (अग्नये) अग्नि के लिये मैं (समिधं) समिधा को, प्रदीपनीय वस्तु को (आहार्षं) आहरण करता हूं, लाता हूं। (स) वह (जातवेदाः) ज्ञानपुञ्ज अग्नि (मे) मुझे (श्रद्धां च) श्रद्धा को भी और (मेधां च) मेधा को भी (प्रयच्छतु) प्रदान करे।

__विनय__ — जब समिधा अग्नि में डाली जाती है तो वह जल उठती है, अग्निरूप होजाती है। समिधा में छिपी अग्नि उद्बुद्ध होजाती है, प्रदीप्त अवस्था में आजाती है। इसीलिये वैदिक काल के जिज्ञासु लोग समित्पाणि होकर (समिधा हाथ में लेकर) गुरु के पास आया करते थे, अपने को समिधा बनाकर उप

के लिये अर्पित कर देते थे जिससे कि वे अपने गुरु की अग्नि से प्रदीप्त होजावें। उसी वैदिक विधि के अनुरूप मैं भी अपने आचार्य के चरणों में उपस्थित हुआ हूं और उनकी अग्नि द्वारा उन जैसा प्रदीप्त होना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि प्रदीप्त हो जाना बड़ा कठिन है। प्रदीप्त होने के पहले तो अपने को जला देना होता है। और यह अपने को जला देना तभी किया जा सकता है जब कि गुरु में पूर्ण श्रद्धा से विशुद्ध जलने के द्वारा मैं अवश्य प्रदीप्त व ज्ञानमय होजाऊंगा। इसलिये पहले तो गुरु में श्रद्धा की जरूरत है। इसी तरह गीली होने आदि रूपी दोष के कारण यदि समिधा अग्नि को धारण नहीं कर सकती है, तो भी वह प्रदीप्त नहीं हो सकती। इसलिये मुझ में ज्ञान के धारण करने वाली बुद्धि, मेधा, की भी जरूरत है। श्रद्धा और मेधा के बिना मैं कभी ज्ञान से प्रदीप्त नहीं हो सकता। पर इस श्रद्धा और मेधा को मैं और कहां से लाऊं? मैं तो इन 'जातवेदाः' अग्नि से, अपने आचार्य देव से ही प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे श्रद्धा और मेधा का प्रदान करें। वे जातवेदा हैं, उन्हें ज्ञान से उत्पन्न हो चुका है, वे ज्ञान की जलती हुई अग्नि हैं। अतः वे 'जातवेदा' यदि चाहें तो मुझे श्रद्धा और मेधा भी दे सकते हैं।

परन्तु अन्त में तो मैं जो प्रातः सायं भौतिक अग्नि के लिये अपनी शाक की समिधा लाता हूं; त्रिविधरूप में आत्माग्नि के लिये अपने शरीर मन आत्मा के प्रदीपनार्थ जो तीन समिधायें चुन लाता हूं; राष्ट्रसेवक या धर्मसेवक बनकर राष्ट्राग्नि या धर्माग्नि आदि के लिये जो तदुपयोगी समिधायें लाता हूं; ये सब की सब समिधायें अन्त में उस 'बृहत् जातवेदाः' के ~~लिये~~

लिये, उस सब कुछ जानने वाले महान् अग्नि के लिये लाता हूं जो कि सब आचार्यों का आचार्य है, सब अग्नियों का अग्नि है, परम परम अग्नि है और अब अन्त में उसी 'बृहज्जातवेदः' से श्रद्धा और मेधा की याचना करता हूं जो कि परम कल्याणकारक है और मेधा का भण्डार है।

[illegible]

कवि

ले. दयानन्द खन्नाहा

कवि ने देखा सूर्य डूब रहा है। पश्चिमांचल अम्बर आँखों को चुँधियाने वाली अपनी वैभव निधि बखेर रहा है जैसे रूष्ट बालक अपने प्रिय खिलौने को। कवि ने तूलिका उठाई और गंगा तट पर जा बैठा।

धूल से सनी हुई मुन्नी उसकी गोद में जा बैठी और विस्मय भरी आँखें ऊपर उठा अरुण-राग-रंजित सांध्य अम्बर की ओर अंगुलियों से इशारा कर पूछने लगी - 'दद्दा' यह क्या है?

कवि ने भोलेपन से कहा - "चंदा मामा की मां का गुलाबी आँचल"।

भोली कलिका ने विश्वास कर लिया।

× × × ×

पास से गुजरते हुए गोप ने भी ऊपर मुंह उठा जिज्ञासा पूर्ण स्वर में पूछा "यह क्या है?"

कवि ने सौम्य भाव से कहा - "देवताओं की [illegible]

लौट रही है। यह देवलोक की धूली है"।

चोर ने कौतुकवश पूछा - "कवि! यह क्या है?

कवि ने आश्वासनयुक्त स्वर में कहा "सूर्य दिनभर के श्रम से थक कर चूर होगया है। यह उसी का चूर्ण बिखरा है। अब संसार अन्धकार में विलीन होजायगा।

अग्निहोत्री ने भी यही प्रश्न किया। कवि ने शान्तस्वर में कहा "देवयज्ञ ने अग्निहोम किया है। ये उसी की अग्नि शिखायें हैं।

भिक्षुक ने बड़ी उत्सुकता से पूछा "यह क्या"

कवि ने उत्तर दिया "स्वर्ग"

भिक्षुक ने विश्वासपूर्णस्वर में कहा "अवश्य"

प्रश्न - कवि! यह क्या है?

कवि ने दार्शनिकभाव से कहा "उसकी विभूति"

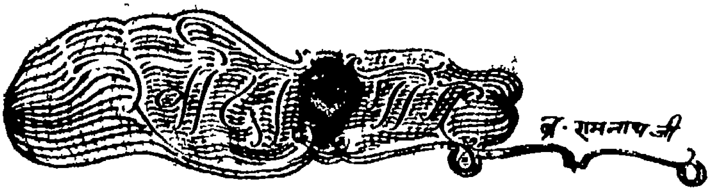
सबने कहा कवि! तू अन्तर्यामी है।

गुरुकुल की अद्भुतता

गुरुकुल तो अनेक अत्यन्त विरोधी दीखने वाली वस्तुओं का समन्वय है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में पूरी स्वाधीनता और पूरी पराधीनता यथोचित रूप में मिली हुई है। गुरुकुल गुरु का घर परिवार होता है गुरुकुल में ब्रह्मचारी घर के बच्चों पुत्रों की तरह रहते हैं अतः घर में पुत्रों को जो स्वाधीनता होती है वह सब गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को प्राप्त होती है, उन्हें बाल सुलभ सब नाज नखरे करने का अधिकार होता है। इस ढंग से उनके बड़े से बड़े अपराध गुरुकुल में क्षन्तव्य होते हैं। वे घरेलू शरारतें चाहे कितनी करें गुरु को वे सब सह्य होती हैं।

क. इस प्रकार गुरुकुल में पूरा स्वाधीनता का वायु मण्डल होता है बड़े ब्रह्मचारियों को विचार और क्रिया की भी वैसी ही स्वाधीनता दी जाती है बड़े ब्रह्मचारियों को छोटे पुत्रों को मार्ग करने की— अपनी स्वाधीनता को भी यथेच्छ उपयोग में लाने दिया जाता है गुरु केवल इन दो बातों में आग्रह-

(शेष पृष्ठ संख्या २४ पर)



बहुत दिनों की बात नहीं, आज से दो-चार साल ही पहले, अभी जब कि महात्मा गांधी ने इस व्यापक आन्दोलन को प्रारम्भ नहीं किया था; खद्दर पहनने वाला लोगों के लिये अवश्य ही असामान्य व्यक्ति समझा जाता था। गाँव के लोगों की बात तो छोड़ दीजिये, उनके मैले, चाहे वे खद्दर के ही क्यों न हों, कपड़ों को देखकर तो हर कोई यही अनुमान करता था कि यह बेचारा गरीब किसान निर्धन होने से शहरी कपड़ों को मोल न ले सकने के कारण स्वयं ही कातबुनकर मोटे झोटे से अपना निर्वाह करता है। उसके खद्दर के कपड़ों को देखकर कोई भी उसमें किसी विशिष्टता या असामान्यता का अनुभव न करता था। किन्तु उजले खद्दर के कपड़े पहने हुए व्यक्ति को देखकर तो उपर्युक्त आशय का ही अनुमान किया जाता था। आज भी ऐसा ही समझा जाता है, किन्तु भिन्न अर्थों में।

आज यदि एक खद्दरधारी

औरों को अपनी ओर आकृष्ट करता है तो इसलिए कि वह कौंसिल में काम करनेवाला है या एक देश सेवक है। किन्तु आज से छब्बीस साल पहले यदि खद्दर-वेष की ओर लोग हैरानी से देखते थे, उसे अपने जैसा आदमी नहीं, अपितु कुछ विशेष समझते थे, तो इसलिये कि वह गांधी बाबा का अनुयायी है, वह गांधी का कहना करता है, छोटे शहरों या कस्बों में तो जहाँ कि स्वदेशी की लहर बिलकुल न पहुंची था; खद्दर पहननेवाला "गांधी" कहीं नाम से पुकारा जाता था।

तब और अब में वास्तव में क्या अन्तर है? कुछ नहीं। खद्दर की खपत की दृष्टि से इसमें कुछ भेद नहीं है। उस समय यदि खद्दर पहनने से देश सेवा होती थी, देश का धन बाहिर न जाकर देश में ही रहता था तो आज भी ऐसा होता है। आज भी खद्दरधारी इन्हीं अर्थों में देश का उपकार करता है। यद्यपि इस दृष्टि से दोनों में कुछ भेद नहीं, फिर भी दोनों समय के खद्दर पहनने वालों की मनोभावनाओं में भी कुछ अन्तर नहीं है, यह कहना शायद उतना ठीक न हो। स्थूल दृष्टि से हम दोनों में कुछ भेद नहीं पाते किन्तु यह तो निस्सन्देह स्वीकार —

करना ही होगा कि उस समय भी, कोई देश में शुद्ध खद्दर को भी प्रयोग करता था तो इसी भावना से कि देश को इससे लाभ पहुँच रहा है। किन्तु आज भी क्या प्रत्येक खद्दरधारी के अन्दर हम इसी भावना को पायेंगे? नहीं, हम किसी नियम को व्यक्त नहीं कर सकते। बहुत लोग ऐसे मिलेंगे जिनके अन्दर देशसेवा की सच्ची लगन है, वे खद्दर का उपयोग इसीलिये करते हैं। किन्तु ऐसे लोग भी कम नहीं जो खद्दर पहनते हैं, लेकिन किसलिये - किस भावना से प्रेरित होकर, इसका वे कुछ उत्तर नहीं दे सकते। वे खद्दर को प्रयोग इसीलिये करने लग जाते हैं कि देश की प्रगति इसी ओर है, व खद्दर इसलिये पहनते हैं कि पहनना चाहिये, लेकिन पहनना क्यों चाहिये इसका उन्हें ज्ञान नहीं है।

विषय को छोड़कर हम किस ओर वैज्ञानिक विवेचन में लग जायें? किसी भी व्यक्ति से कोई खद्दर पहनता हो, वह देश का और अपना उपकार करता है इसमें सन्देह नहीं। खद्दर पहनना क्यों चाहिये - इसके ज्ञान की अधिक आवश्यकता भी नहीं है, इसमें श्रद्धा ही पर्याप्त है।

खद्दर की ओर देश की प्रगति

आगमन

को देखकर कोई यह भी कहने लग गये हैं कि खद्दर पहनना भी आजकल एक शान में शामिल हो गया है। इसके स्वीकार करने में भी किसी को कोई आपत्ति नहीं और न ही होनी चाहिए। यदि खद्दर पहनने को शान में गिना जा सके तो इस शान का प्रचलित होना स्वयं बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। और हम तो यही चाहेंगे कि यह शान केवल शौकीन लोगों तक ही सीमित न रहकर प्रत्येक भारतीय की हो जाय। प्रत्येक भारतीय इसी शान से सुसज्जित होकर विदेशों को दिखलाये कि भारत भी अपनी शान रखता है।

रहा! उस समय और इस समय में बहुत अन्तर आ गया है। दो साल पहले एक रेलगाड़ी के डिब्बे में नज़र दौड़ाने से चारों ओर विदेशी ही विदेशी दीख पड़ता था; खद्दर के भी तो मुश्किल से ही कोई मिलता था। और उसी समय की बात है कि खद्दरधारी इतना साफ़ और परहितैषी समझा जाता था कि एक यात्री उसे इस प्रकार कह सकता था कि -"मुझे दुःख है कि आपने खद्दर पहिना हुआ है और फिर भी आप खिड़की के आगे खड़े होकर यात्रियों को गाड़ी में चढ़ने से रोक रहे हैं"। उस समय खद्दर पहनने वाले से यही आशा की जाती थी-

उद्योग भारत

कि वह स्वयं कष्ट उठाकर, स्वयं रूखा रहकर, दूसरों को अपने स्थान पर बैठायेगा - उन्हें कष्ट न उठाने देगा। उस समय खद्दर पहनने वाले ही गिने-चुने थे। किन्तु आज उसे पुकार इस दिशा में न पाकर कोई इने गिने पर नहीं खद्दरधारियों की बहुत संख्या न दीखे किन्तु साथ ही विदेशी धारी भी गिनती के ही दीखते हैं। तात्पर्य यह कि दिनों दिन स्वदेशी का प्रचार बढ़ता जा रहा है और विदेशी के लोगों को घृणा हो रही है। महात्मा गांधी के इस आन्दोलन ने बहुत कुछ कर दिखाया है। किन्तु, इतना होने पर भी अभी तो खद्दर की माँग बहुत ही थोड़ी है। भारत के लिये तो वह दिन सुदिन होगा जिस दिन प्रत्येक भारतीय के तन पर खद्दर ही सुशोभित होगा।

एक समय वह भी था जब कि यह भारतदेश व्यापार में सबसे आगे बढ़ा हुआ था। विशेष कर कपड़े के व्यापार में तो यह बहुत प्रसिद्ध रह चुका है। आर. सी. दत्त (R.C. Dutt) कहते हैं - "प्राचीन समय में यहाँ के शिल्पकारों की वस्तुएँ संसार में सब कहीं बिकती थीं। उनकी कारीगरी की बग़दाद में हारूँरशीद के

दरबार में कदर होती थी। और उन्होंने खलीफा शार्लमेगन और उसके दरबारियों को आश्चर्यचकित कर दिया था। एक अंग्रेज कवि लिखता है कि वे लोग अपनी आँखें फाड़ २ कर बड़े आश्चर्य से रेशमी और कारचोबी के वस्त्रों तथा रत्नों को देखते थे, जो कि पूरब के दूर देश से यूरोप के नवीन बाज़ारों में आये थे।"

क्या एक विदेशी के मुख से अपने इस गौरव को सुन कर हमारा मस्तक अभिमान से ऊँचा नहीं उठ जाता? क्या हम अपने इन पुरखाओं के गौरव को याद करके ही खुश होते रहेंगे? हमारा कर्तव्य तो यह है कि एक बार फिर वैसा ही बन कर दिखा दें, अपने उस प्राचीन गौरव को पुनरुज्जीवित कर दें।

महात्मा गांधी न जाने कब से चर्खे की रट लगा रहे हैं लेकिन हम उस ओर ध्यान ही नहीं देते। हमें विश्वास ही नहीं होता कि चर्खे से, जिससे कि घंटों में छटांक भर सूत तय्यार होता है, भी कोई व्यवसाय चल सकता है। इसी तर्क का सहारा लेकर बड़े २ लोग भी चर्खे को खिलौना

कर कर डाल देते हैं। लेकिन- क्या उन्होंने कभी इस ओर भी ध्यान दिया है कि महात्मा गांधी जिसके पीछे सारा देश चल रहा है, जिसके नाम से ही ब्रिटिश सरकार कांपती है और जिसकी अक्ल पर संसार चकरा रहा है, वह वर्षों से इस चर्खे के लिए- जोर से बोल रहा है। क्या वह पागल है! नहीं, वह तो दूरदर्शी है, वह इसके द्वारा किए होने वाले दूर के परिणाम को सोच रहा है।

कपड़े के व्यापार की हमारी प्राचीन उन्नति, जिसका कि अभी हमने संकेत किया है, क्या चर्खों के आधार पर थी? उस- का आधार भी यही चर्खा- यही छोटा सा खिलौना - था। यहाँ की स्त्रियों का खाली समय इसी उपयोगी कार्य में व्यय होता था। उस समय कितनी स्त्रियाँ इस काम को करती थीं और वे कितना सूत तय्यार कर लेती थीं इसकी गणना बताने पर सुनने वाले शायद आश्चर्य करें। लीजिये, इसे भी देख लीजिये —

.. उस समय इस देश की वस्तुयें दुनियाँ के सब भागों में भेजी जाती थीं; और वह दूसरे देशों की वस्तुओं से अधिक पसन्द की जाती थीं। अकेले बंगाल प्रान्त से १५ करोड़

का महीन कपड़ा, हर साल विदेशों को भेजा जाता था। पटना में ३३० ४२६ स्त्रियाँ, शाहाबाद में १५८ ५०० और गोरखपुर में १७५ ६०० स्त्रियाँ चरखों पर सूत कातकर ३५ लाख रुपये कमाती थीं। इसी प्रकार दीनाजपुर की स्त्रियाँ ८ लाख और पूर्णिया ज़िले की स्त्रियाँ १० लाख रुपये का सूत कातने का काम करती थीं।"

उपर्युक्त उद्धरण "निबन्ध संग्रह पृ. ६०" से लिया गया है। इससे अच्छी प्रकार स्पष्ट है कि उस समय चर्खे के द्वारा देश को कितनी आय होती थी। किन्तु आज तो चर्खा लगभग दूर हो गया है। खाली समय इस उपयोगी काम में न लगा कर, इधर उधर के व्यर्थ के कामधन्धों में ही नष्ट कर दिया जाता है। चर्खे से सूत बहुत कम काता जाता है, इसी से वह मंहगा है। परिणामतः जुलाहे लोग इस सूत को न खरीद कर मिल के सूत को खरीदते हैं और उसी से खड्डी के द्वारा कपड़ा तय्यार करते हैं, जो कि "ठठुआ खद्दर" कहलाता है। इस खद्दर को आज कल बहुत लोग काम लाते हैं, क्योंकि वह उन्हें बहुत सस्ता पड़ता है। ग्रामीण लोग तो अवश्य। इसी को प्रयोग में लाते हैं।

आजकल

यदि चर्खे का खर्च मुनासिब हो सस्ता हो तो शुद्ध खद्दर हमें बहुत ही थोड़ी कीमत पर मिल सकता है। इसके सस्ता होने पर स्वतः एव खद्दर की मांग होगी, और दिनोदिन उसका चलन बढ़ता ही जायेगा। यदि खाली समय को ही कातने के काम में लगा दिया जावे तो कितना बड़ा कार्य सिद्ध हो सकता है! खाली समय का सुन्दर उपयोग और साथ ही इतना बड़ा लाभ - इस कार्य को कौन पसन्द न करेगा?

प्राचीन समय में कातना, सीना-पिरोना तो स्त्रियों का मुख्य काम ही समझा जाता था। कबीर सुकहते थे आज से ६०० वर्ष पहले अपनी पुत्री को उपदेश देते हुए कहा था —

"हे री मोतन गुजरहत न पनपसे
का रहे- परदानशीए- बदन आ..."

अर्थात् चर्खा कातना और सीना-पिरोना न छोड़ना। इसे छोड़ बैठना अच्छी बात नहीं है, क्योंकि यह परदानशीनी का - शरीर ढकने का - साधन है।"

इसी उपदेश को महात्मा गांधी बरसों से कह रहे हैं। करोड़ों ने उसे सुना है। आज तक जिन्होंने नहीं सुना है, वे भी एक दिन सुनेंगे, और एक दिन आयेगा जब कि इस चर्खे से ही हमें अपने प्राचीन गौरव को फिर समझने देख सकेंगे।

आत्मबोल

(पृष्ठ संख्या २४ से आगे)—
सब उदारकिता करता रहता है, और उनके सहारे में ही इस धारा की उन्नति और गुरुकुल का भला होता है। यह ही ठीक प्रकार की स्वाधीनता है जो कि विद्यार्थी के विकास के लिए आवश्यक है परन्तु गुरुकुल के ब्रह्मचारी की यह सब स्वाधीनता इसी लिये है क्योंकि वह अपने आप को इसी तरह गुरु के हवाले कर चुका होता है, गुरु को समर्पण कर चुका होता है।

इस्लाम में इस आत्म समर्पण को 'बैत' कहते शब्द से वर्णित किया है।

गुरुकुल को आत्म समर्पण करना यह गुरुकुल की एक महान् विशेषता है। वेदारम्भ के समय में जब वह अपने घर को छोड़ गुरु के कुल का बन जाता है तभी वह इसी तरह से पराधीन भी हो जाता है, गुरु के सर्वथा अधीन हो जाता है। उसे गुरु की आज्ञा के बाहर जाने की जरा भी स्वाधीनता नहीं होती उसे सदा गुरु की आज्ञा को गुरु की वाणी से बढ़कर

(शेष पृष्ठ संख्या ४६ पर देखें)

सामयिक परिवर्तन की प्रक्रिया

ले॰ बालकृष्णजी.

संसार की प्रत्येक वस्तु में समय समय पर परिवर्तन आते रहते हैं। कोई वस्तु सर्वदा एक रूप में नहीं रहती। आज हम जिस वस्तु को किसी रूप में देखते हैं, कुछ दिनों बाद वह इतनी बदल जाती है कि उस को पहचानना भी कठिन हो जाता है। यह परिवर्तन का नियम केवल भौतिक जगत् में ही कार्य नहीं कर रहा, परन्तु समाजों और व्यक्तियों के जीवन पर भी यही नियम लागू होता है। प्राचीन पुरुषों के जो विचार थे आज वे विचार नहीं रहे, प्राचीन पुरुषों के जो आदर्श थे वे आदर्श भी नहीं रहे। नवीन और प्राचीन पुरुषों के जीवन में बहुत अन्तर आ गया है।

इन परिवर्तनो के बहुत से कारण है। राजनैतिक और भौतिक परिस्थितियो के भेद के साथ २ आदर्श और विचारो के भेद का भी इन ~~परिस्थितियो~~ परिवर्तनो मे अधिक स्थान है।

जातियो के जीवन मे आदर्श भेद कैसे होता है इस का वर्णन प्रो अलेग्जण्डर ने बहुत उत्तम ढंग से किया है। वे कहते है कि विकासवादी भौतिक विकास के क्षेत्र मे Natural selection के नियमो को लगाते है और उस के अनुसार विकास की प्रक्रिया की व्याख्या करते है। उसी नियम को आदर्शो के विकास के क्षेत्र मे लगा कर आदर्शो के विकास की व्याख्या की जा सकती है। प्राणी जगत् मे तो संग्राम विशेष २ जातियो मे होता है और उस संग्राम मे उस जाति की विजय होती है जो परिस्थितियो के अधिक अनुकूल होती है। परन्तु आदर्शो के क्षेत्रो मे संग्राम आदर्शो मे होता है। इस संग्राम के क्षेत्र प्राणी नही होते परन्तु मनुष्य का मनक्षेत्र

इसी भाव को स्पष्ट करते हुये आगे लिखते हैं : —

किसी विशेष समयमे कोई विशेष प्रतिभा वाला व्यक्ति अपने समाज की कमजोरियों को अनुभव करता है और समाज में कुछ लोगों के सामने अपने विचारों को कहना प्रारम्भ करता है। पहले पहल लोग उस के विचारों को अपनाने के लिये तैय्यार नहीं होते क्यों कि वे विचार उस समय के लोगों के लिये सर्वथा नवीन और क्रान्तिकारी मालूम होते हैं। वे विचार (Ethos of the people) उस समय के माने हुये विचारों के विरुद्ध होते हैं। इस लिये आम जनता उस के नवीन विचारों का भरसक विरोध करती है। अगर वह (नवीन विचारों को समाज के सामने ~~विचार~~ उपस्थित करने वाला) व्यक्ति सुधारक होता है, लोगों के विरोध की उपेक्षा कर के सब के सामने खुले तौर पर अपने विचारों

आजकल

को रखता है, तो उसे अपने उन लोक विरुद्ध विचारों के कारण बहुत कष्ट झेलने पड़ते हैं। यदि वह लोगों से दी जा रही यातनाओं को भी सहर्ष झेल कर और निर्भीक होकर अपने विचारों को जनता के सामने उपस्थित करता है, तो उस समय कुछ व्यक्ति ऐसे निकल आते हैं जो उसके विचारों से सहमत होते हैं। दृढ़ निश्चय और विश्वास से दुःसाध्य से दुःसाध्य कार्य भी सहल हो जाते हैं। ये नवीन अनुयायी भी पहले पहल समाज के कोपभाजन बने रहते हैं। परन्तु धीरे २ उन विचारों का समाज में विस्तार होना प्रारम्भ होता है। वह संख्या नवीन विचारों की उपयोगिता को अनुभव करने लगती है। इस अवस्था में इन विचारों के प्रति जो पहले घृणा का भाव था वह हट जाता है और सम्मान का भाव बढ़ता जाता है। इस प्रकार जब वह संख्या उन

विचारो को अपना लेती है तब वे विचार जातीय आदर्शों के अंग बन जाते है। इस अवस्था के बाद जातीय जीवन मे एक महान् आश्चर्यजनक परिवर्तन आता है जिस से समाज का समाज पलट जाता है। नवीन आदर्शो के अनुसार जाति की संस्था बननी प्रारम्भ हो जाती है। प्राचीन संस्थाओ मे ढील आनी प्रारम्भ हो जाती है और इस प्रकार समय समय मे परिवर्तन का चक्र चलता रहता है।

ऊपर के ~~परिवर्तन~~ से परिवर्तन की प्रक्रिया जितनी सरल मालूम होती है वह वस्तुत इतनी सरल नही है। जातियो का जीवन बिलकुल पेचीदा होता है। उस की गति विधि को जानना बिरले ही अनुभवी व्यक्तियो का कार्य होता है। इस के सिवाय उपर्युक्त प्रक्रिया के वर्णन

से ऐसा प्रतीत होता है कि यह परिवर्तन बहुत जल्दी हो जाते हैं, वस्तुतः यह ऐसी बात नहीं। साधारण से साधारण परिवर्तन के लिये कई शताब्दियों की आवश्यकता पड़ती है। समाज में जो बात गढ़ गई हो उस को निकालना और उस के स्थान पर किसी नवीन विचार का प्रचार करना सुगम कार्य नहीं है। इसी परिवर्तन के लिये कई बार बड़ी २ क्रान्तियां होती हैं। जो प्राचीन विचारों के आधार पर खड़ी हुई संस्थाओं को नष्ट भ्रष्ट कर के नवीन विचारों के आधार पर नवीन संस्थाओं का निर्माण करवाती हैं।

यही मनुष्य समाज का आज तक का इतिहास है। नवीन विचारों के प्रादुर्भाव से फ्रांस की राज्यक्रान्ति और रूस की राज्यक्रान्ति में-

जिन के द्वारा शक्तिशाली राजाओं की गद्दियां उलट गईं- इसमें यही प्रक्रिया काम करती हुई दिखाई देती है। आज भारत में भी राष्ट्रीयता के नवीन विचार जागृत हो रहे हैं। इस समय गवर्नमैन्ट अपने फौलादी पंजों से उन्हें कुचलने का प्रयत्न कर रही है। परन्तु आखिर कब तक ऐसा हो सकेगा? एक दिन आने वाला है, जब भारत में अपने सब आन्तरिक विभेदों को भूल कर शक्ति का संचय कर के वही काम कर दिखावेगा, जो आज से एक दो शताब्दी पूर्व इटली और रूस में हुआ है। और इस के बाद अपने राष्ट्रीय हित की दृष्टि से नवीन संस्थाओं का निर्माण कर के उन्नति के मार्ग में अग्रसर होगा।

आज कल

(पृष्ठ संख्या ६२ का शेष)

और अप्रिय से अप्रिय आज्ञा को आनन्द पूर्वक मानना चाहिये। इसी से ब्रह्मचारी का हित और कल्याण हो सकता है। मेरी समझ में ये दोनों ही यह स्वाधीनता और यह पराधीनता दोनों ही किसी विद्यार्थी के विकसित और उन्नत होने के लिये शिक्षा के सच्चे अर्थ में शिक्षित होने के लिये अत्यावश्यक है। विद्यार्थी को कहाँ तक स्वाधीन होना चाहिये कहाँ तक और कितना पराधीन होना चाहिये इसका जितना सुन्दर समन्वय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में किया गया है उतना संसार की किसी अन्य शिक्षा पद्धति में नहीं है। इसलिये मुझे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली सर्वश्रेष्ठ लगती है, इसीलिये मुझे गुरुकुल प्रिय है।

अस्पृश्यता

ब्र. विनायक राव जी

<u>प्रारम्भिक कथन</u>:— आज यदि हम संसार पर एक नज़र डाल कर देखना चाहें कि क्या कोई देश हमारे इस घृणित कार्य (अछूतों से घृणा रूप) में हमें सहयोग देने को तैय्यार है तो हमें लज्जा से सिर झुका लेना पड़ता है। सहयोग के बदले संसार हमसे असहयोग करने को तैय्यार है। इस समय पृथ्वी के किसी भी कोने में, ढूंढ कर भी यह बात नहीं पा सकोगे कि किसी भी देश ने अपनी इतनी बड़ी संख्या को दूध में से मक्खी की तरह निकाल कर अलग फैंक दिया हो; उस पर नज़र डालना भी घृणा का कार्य समझा जाता हो; पर यही चीज़ आज भारत में हमें स्थान २ पर मिलती है। अछूत शब्द भारत में ही अपने आपको सार्थक सिद्ध कर रहा है।

मानवीय सभ्यता के इतिहास में से बहुत से मौके आए हैं जब कि एक मनुष्य को दूसरे का दास समझा जाता था उससे पशुवत् व्यवहार होता था, इसी प्रकार

ऐसे भी अवसर आये हैं जब कि एक जाति को दूसरे की अपेक्षा निकृष्ट और पतित समझा जाता रहा गया है और उससे किसी प्रकार भी सम्बन्ध रखना एक अपना अपमानजनक बात समझी गई है पर ऐसे २ मानवीयता के कलंक रूप अवसर कभी स्थिर नहीं रहे। ये दुनियाँ में आए और विद्युत की चमक जैसे प्रकट हो विलीन हो गये।

'<u>अछूतों की दुर्दशा का दिग्दर्शन:-</u>

पर अपने दौर्भाग्य से वही अवसर आज हम भारत में देख रहे हैं। मध्यकाल के इस रूप का न जाने कब समाप्ति-काल आयगा। आज भी भारत-वसुंधरा के अधःस्थल पर अछूतों से कितना निन्दनीय व्यवहार किया जाता है। उनको कुओं पर चढ़ने का अधिकार नहीं; मन्दिर की सीढ़ियों पर वे पैर नहीं रख सकते; पाठशालाओं में सबके साथ नहीं बैठ सकते हैं। इसका क्या कारण है? उत्तर एक ही है - वे अछूत हैं! कई स्थानों पर तो ऐसा होता है कि अध्यापक ऊपर के मंजिल में बैठता है और अछूत विद्यार्थी नीचे जमीन पर, वहीं से वह चिल्ला २ कर उन्हें पढ़ाता है। न जाने अछूत शब्द में क्या बिजली भरी है कि उसे सुनते ही एक हिन्दु चौंक कर अलग खड़ा हो जाता है। दक्षिण भारत में परिआ (Pariah) लोगों को जिन्हें कि अछूत समझा जाता है, दूर से चिल्लाना पड़ता है कि

रह जाओ उन्हें न छूना मत। ओह, कितनी गिरी हुई अवस्था है। क्या वे आदमी नहीं? क्या उनमें अनुभव करने वाला हृदय नहीं? क्या उन में मनुष्यों के गुण दया-प्रेम इत्यादि नहीं? इस तरह उनको दूर रखना कहाँ तक उचित है इस बात को प्रत्येक मनुष्य यदि शान्त चित्त हो अपनी बुद्धि से सोचें तो उसे इसके औचित्य अनौचित्य का पता लग सकता है। इन अछूतों का इसके सिवाय क्या अपराध है कि वे उन जातियों में पैदा हो गये जिनको कि अछूत समझा जाता है। पर यह बात क्या उनकी शक्ति से बाहिर ही है, क्या वे अपनी उत्पत्ति में स्वतन्त्र हैं? यदि एक आदमी का जन्म ब्राह्मण के घर में हो जाता है तो क्या वह अपने जन्म मात्र से पूज्य हो गया? आज दुनियाँ धर्मों को कुछ महत्व नहीं देती। उसकी दृष्टि में ब्राह्मण और भंगी समान बराबर हैं, जो भी उसके संघर्ष में आ उससे टक्कर ले सकेगा वही उसके लिये ऊँचा और माननीय व्यक्ति है। हम इस तरह के हजारों उदाहरण दे सकते हैं कि किसतरह से एक साधारण और अछूत कहे जाने वाले व्यक्ति ने उन्नति कर दुनियाँ में ऊँचा स्थान पाया। दुनियाँ ने उसे मस्तक पर फूल की तरह चढ़ाया वह देश का गौरव स्थान बना।

भारत इस बात को न समझता हुआ अब भी लकीर का फकीर बना हुआ है। किसी से कहो कि यह मह

अछूत-प्रथा किस काम की है, इससे हानि के सिवाय लाभ कुछ नहीं तो यह व्यर्थ दोष है कि बाप-दादों से चली आ रही है इस को तोड़ कर क्या करेंगे। पर वे आदमी ऐसा ही समझते कि यही एक ऐसी चीज़ है जिसने कि भारत को इतना नीचे गिरा रखा है। भारत पर यह कलंक का दाग इतना गहरा लगा हुआ है कि अन्य देशों के साथ यह एक पंक्ति में नहीं बैठ सकता। उनको अपना सहयोगी नहीं कह सकता। भारत की अपनी यह एक खास वस्तु है जो कि उसे अन्य देशों से बिल्कुल पृथक् कर रही है और उसे एक तरह से अछूत बना रही है। इस अपने भाइयों को अछूत समझते हैं तो अन्य देश हमें अछूत समझते हैं हमसे घृणा करते हैं।

महात्मा जी Young India (1921) में लिखते हैं कि जिस पाठशाला में मैं पढ़ने जाया करता था उसमें अछूत भी पढ़ा करते थे। पढ़ कर जब मैं घर लौट कर आता था तब मेरी माता मुझे कहती थी कि जा तू मुसलमान को छू आ क्योंकि तूने पाठशाला में भंगी चमार आदि के लड़कों को छुआ है उन्हें छूने का यही एक प्रायश्चित्त है। हमारे अन्दर अछूतों के लिये कितनी निकृष्ट भावना है। हम उन्हें मुसलमानों से भी नीच समझते हैं इस दर पर मुसलमान मिलती तो यह

सकता है पर चमार भंगी नही। यद्यपि यह अपना भाई ही है - हिन्दु है और उसका घड़ा उस भिश्ती की मशक से अच्छा है जो कि कभी भी साफ नही की जाती है और सब स्थानो पर बिना किसी विचार के रख दी जाती है। पर तो भी वह मशक तो कूए पर रखी जा सकती है पर उसका घड़ा नही। बिचारे इन अछूतों को बहुतेरे स्थानो पर जोहड़ो से पानी पीना पड़ता है। उसी मे उनके पशु आदि घुसते है और वही स्नान भी नहाते हैं। बहुत जगह पर यह भी देखा गया है कि एक ही रस्सी के दोनो सिरो पर भिन्न२ डोल बाँध दिये गये है। एक से अछूत पानी भरते हैं और एक से अन्य ब्राह्मणादि।

<u>अछूतों की आधुनिक अवस्था का कारण</u>

इस तरह से हम देख सकते हैं कि उन्हें हरतरह से अलग २ रखने की चेष्टा की गई है। और उनके निशाने भी [illegible] की गई है। उनको अधिकार नही कि वे शास्त्रो को पढ़ सके और अपने आराध्य देव के मन्दिर मे दर्शन कर सके। इन सब बातो का कारण मध्ययुग के ब्राह्मण पण्डित ही थे वे चाहते थे कि हमारा हरतरह से सम्मान हो और हम सुख से रह सकें उन्होंने ऐसी२ व्यवस्थाये कर दी कि जिससे विद्या का सम्बन्ध जाति के बहुत थोड़े हिस्से से रह गया और ज्यादा हिस्सा अनपढ़ रहने लगा।

इस देश हिस्से में अछूत कहलाये जाने वाले भाई भी आगये। इनका किसी प्रकार का भी विद्या पर अधिकार न रहा। इनमें दिन प्रतिदिन असभ्यता बढ़ने लगी। समाज से अलग ही रखने के कारण उन उनमें होने वाले सुधार भी इनमें न हो सके और ये एक पतित-समाज के अंग बन गये। न इन्हें सफाई का ध्यान रहा है और न पवित्रता का। हर तरह से ये असभ्य बनाये गये। मानव होते हुए भी इन्होंने उच्च कहलाने वाले समाज के सारे अत्याचारों को सहा और उनकी हर तरह से सहायता की इनकी सेवा का बदला समाज ने इन्हें कुचल दिया ये बिलकुल निर्धन हो गये।

इसी अवस्था ने बड़े २ आपत्तियों का रूप धारण कर लिया। इस समय यदि हम उनके घरों में जावें तो हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और दरिद्रता का नग्न चित्र हमारी आंखों के सामने नाचने लगता है। मानो दरिद्रता रह २ कर उन्हीं देवी के लिए इसका कारण तुम्हीं हो। एक झोंपड़े में कई आदमी घुस कर [illegible] कर अपनी सर्दी को दूर करते हैं। न तन पर कपड़ा पहिनने को है न कुछ ओढ़ने को है। सारी रात इसी तरह आग के पास बैठ २ गुजारती हैं। एक तो इस दरिद्रता के कारण अछूत भाई मरे जा रहे हैं उस पर फिर समाज के दुर्व्यवहार ने इन्हें और भी पीड़ित कर दिया।

आगमिका

इस अवस्था का यहीं अन्त न हुआ यह छुआ छूत का भूत इतना आपस में भी फैल गया। चमार भंगी को अछूत अछूत समझने लगे और उनसे अलग २ रहने लगे। इस तरह न जाने हिन्दु-समाज में कितने विभाग बन गये। छुआछूत बेहद बढ़ गई। यदि किसी व्यक्ति पर किसी अछूत की परछाई भी पड़ जाती थी तो वह अपने आप को अपवित्र समझता था। यद्यपि यह अवस्था अब नहीं है तो भी कुछ समय पहिले मद्रास प्रान्त में इस का अस्तित्व था।

<u>इसका परिणाम</u> :- समाज के मानवीयता के विरुद्ध सिद्धान्तों का परिणाम एक ही हुआ करता है - वह है क्रान्ति अर्थात् उनके विरुद्ध बगावत। जब हमलोगों ने अछूत भाइयों से मनुष्यता के अधिकार छीन लिये, उन्हें अपने पशुओं से भी निकृष्ट समझने लगे तो उनमें स्वयं भी भी अपने आप ऊँचा उठने की भावना उत्पन्न हुई है। आखिर कहाँ तक एक मनुष्य अत्याचार सह सकता है। एक न एक दिन अवश्य ही वह उन अत्याचारों से दिक आकर बड़े २ भीषण कार्य को भी करने को तैय्यार हो जाता है। यही बात हम अछूत-समाज के प्रति भी कह सकते हैं। उच्च कहलाने वाली समाज के पाशविक कृत्यों से अछूत व्याकुल हो उठे और अपने आप उन्होंने इसका प्रतिवाद किया उसी का

परिणाम है कि आज वे इस तरह से अपने मनुष्यता के अधिकार को समझते हुए भारतीय नवशासन विधान में अपना हक माँगते हैं इसी अत्याचार के परिणाम स्वरूप भिन्न २ नेता उठ खड़े हुए जिनकी सहायता से वे स्वयं अपने शुभ अशुभ को सोचने लगे। यद्यपि उनकी अवस्था पूर्ण रूप से सुधरी नहीं है पर तो भी पहिले से बहुत अंशों में सुधर गई है।

<u>सुधार (समाज की दृष्टि से)</u>:- हमें इस समय हर तरह से उनकी सहायता करनी चाहिये। उनका सुधार करना चाहिये। यदि हम इस कार्य को अपने हाथों में नहीं लेंगे तो समय स्वयमेव इसे स्वयं हमसे करायेगा जैसा कि रूस में हुआ है स्वयं समय आने पर जार के विरुद्ध पार्टियाँ खड़ी हो गई और उसे अन्त कर दिया। उस समय बड़े बदला शक्ति है वह हमेशा ऐसे २ अत्याचारों के अन्त की सामग्री को उपस्थित करता रहता है। इस समय इस छुआछूत की रक्षा वैसे भी कठिन मालूम पड़ता है क्योंकि रेल नल आदि ऐसी चीजें निकल आई हैं जो कि इस प्रथा को दूर करने में बहुत बड़ा हिस्सा ले रही हैं। रेल में सब आदमी इकट्ठे बैठते हैं। कितना ही कोई बचे तो भी टकराकर भरे डिब्बे में वह भंगी से छुआ ही जाता है। इसी भी तरह Municipality के नल से सब ही आदमी पानी भरते हैं

[illegible]

इन बातों को ध्यान में रखते हुए वास्तव में हम बहुत अंशों में इस प्रथा को कहने ही मात्र के लिये मानते हैं। मौका पड़ने पर छुआछूत का कुछ भी ध्यान नहीं रखते। प्राय: कर घोसी (दूध दुहने वाले ग्वाले) लोग मुसलमान होते हैं, उनका दुहा हुआ दूध ब्राह्मण भी लेते हैं। इस अवस्था में उनकी छुआछूत किस प्रकार से रह सकती है, हाँ कहने मात्र को भले ही रह जावे।

<u>राज नैतिक दृष्टि से</u> :- यद्यपि इस समय यह छुआछूत कहने मात्र को ही रह गई है तो भी यह हमारे स्वतन्त्रता में एक बहुत बड़ी अड़चन सिद्ध हो रही है। क्योंकि अछूत, अपने अधिकार को समझते हुए हिन्दुओं से ठुकराये जाने पर अपने को हिन्दुओं से भिन्न समझने लगे और अपने अधिकार भी हिन्दुओं से अलग रह कर मांगने लगे। इसी के परिणाम में महात्मा जी ने आमरण अनशन करने का व्रत लिया था। ऐसी अवस्था हमारे लिये यह राजनैतिक दृष्टि से बड़ी महत्व की बात है कि हम इस छुआछूत को दूर करें। महात्मा जी ने तो इस विषय को अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया है और अपना सारा जीवन इसी को समर्पित कर दिया है। कांग्रेस के कार्यक्रम का भी यह एक मुख्य अंश बन गया है कि किस प्रकार इस प्रथा को दूर किया जावे। इसका कारण स्पष्ट ही है कि हिन्दू

इस बात को अनुभव कर रहे हैं कि इस अपने हठी बड़े भाग को अपने सेअलग रख कर सफलता प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि यदि हम ऐसा करेंगे तो वे स्वयं ही हमारे विरुद्ध उठ खड़े होंगे।

<u>सुधार के अन्य उपाय</u>।- इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए महात्मा जी ने गुरुवायूर के मंदिर में अछूतों के प्रवेश के लिये प्राणान्त अनशन व्रत प्रारम्भ किया था। उस मन्दिर के लिये अनशन व्रत करने का अभिप्राय यह कदापि नहीं हो सकता कि महात्मा जी उसी मंदिर को ही अछूतों के लिये खुलवाना चाहते हों अपितु उनका अभिप्राय यही था कि किसी तरह से उक्त मन्दिर उनके लिये खुल जाये क्योंकि यह मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है। हजारों आदमी यहाँ दर्शन करते हैं अतः इसके खुल जाने पर अन्यों के खुलने में उतनी बाधाओं का सामना न करना पड़ेगा।

इस समय देश में जगह जगह उनके लिये मन्दिर खोले जा रहे हैं क्योंकि अब बहुत से हिन्दु समझने लगे हैं कि वास्तव में ही यह प्रथा हमारी जाति के लिये कलंक है, जहाँ तक हो सके इसे जल्दी दूर करना चाहिये। इसी कारण है कि आज Assembly में Temple Entry Bill उपस्थित हुआ है। हमें चाहिये कि हम इसे सामूह से पास करवाने की कोशि

करें और सरकार बाधित करे कि वह इसमें किसी प्रकार से भी बाधा न डाले। इसके साथ ही साथ हम सरकार को बाधित करें कि वह ऐसे २ नियम बनावे कि जिस से अछूतों के लिये Public places खुल जावें, वे उनका पूरा २ उपयोग उठा सकें। सरकारी कुओं पर चढ़ सकें। इस तरह इस कार्य में सरकार भी बहुत कुछ सहायता कर सकती सकती है।

अर्थात सरकार भी बहुत अंशों में हमारे इस कार्य में बाधक रही है। एक समय लाला लाजपतराय जी ने Assembly में अछूतों के सुधार के लिये १ करोड़ (या १ लाख) रुपये का प्रस्ताव रखा था पर सरकार ने यह कह टाल दिया कि हमारे पास इतना रुपया नहीं है। आन्याय का दावा भरने वाली और हितकारिणी सरकार से पूछें कि आ- अंग्रेज अधिकारियों के लिये जो कि इतनी मोटी २ तनख्वाह पाते हैं, रुपया कहाँ से आता है। इन बड़ी २ सरकारी Buildings के लिये रुपया कहाँ से बरस पड़ा है। हम पर इतने बड़े २ Taxes लगाये जाते हैं आ- का क्या लाभ जब जब कि हमारे लिये उनका उपयोग नहीं किया जाता है सच पूछो तो सरकार चाहती ही नहीं कि किसी भी प्रकार यह प्रथा टूट जावे वह चाहती है कि किसी तरह यह हिन्दु समाज का एक बड़ा भाग अन्धकार में ही पड़ा रहे।

इसी तरह हम इस उदाहरण से यह समझ सकते हैं कि Municipality आदि भी इस तरफ कितनी उपेक्षा से देखती है। जालन्धर के चमारों की बस्ती के पास ही एक गढ़ा है उसमें बरसात के दिनों में पानी इकट्ठा हो जाता है और वहीं सड़ता रहता है। इस कारण Health officer ने उसे बन्द करवाने के लिये कहा और उसे सारे शहर के कूड़े से बन्द किया गया क्या उसे अच्छी मिट्टी से बन्द नहीं किया जा सकता था। यदि वहाँ अन्य अच्छे रहते होते तो वे अवश्य इसके विरुद्ध युद्ध छेड़ते पर बेचारे गरीब और दीन चमार कुछ न कह सके। उनकी बस्ती समाज के बाहर पर ही कूड़ा फेंका गया। क्या उन में वही अनुभव शक्तियाँ नहीं जो अन्य मनुष्यों में हैं। यदि हैं तो फिर क्यों उनसे इस तरह का व्यवहार किया जाता है।

उनके सुधार का अन्य एक उपाय यह भी हो सकता है कि हम उनसे जाकर मिलें, उनमें रहें मेल बढ़ायें तो उनकी सामाजिक स्थिति का सुधार हो सकता है। उनको किसी प्रकार हम यह समझा दें कि हम तुमसे घृणा नहीं करते, इसका एक ही ढंग है और वह यह कि हम एक कोई खास दिन निश्चित किया करें जब कि उनके मोहल्ले में जाकर साफ करें अथवा उनके घरों के आगे से साफ करावें। उनको साफ रहने की

शिक्षा है। समाज से बिल्कुल बहिष्कृत कर दिये जाने के कारण और साथ दरिद्रता का प्रकोप होने के कारण उनसे सफ़ाई बहुत दूर रहती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि वे सफ़ाई किसे कहते हैं यह जानते ही नहीं। यद्यपि वे इस अवस्था में साफ़ रह सकते हैं पर शिक्षा के अभाव के कारण वे ऐसा करने में असमर्थ हैं अतः हमें चाहिये कि उनको सफ़ाई की शिक्षा दें।

महात्मा गांधी जी ने अपने अछूत दिवस के कार्य क्रम में यही बात लिखी थी कि इस दिन हम स्वयं उनकी गलियों व सड़कों को साफ़ करें। इसप्रकार से करने का सिर्फ़ यही अभिप्राय है कि हम मनुष्यों के सामने यह आदर्श रखना चाहते हैं कि ये कार्य स्वयं कोई खराब नहीं हैं। आखिर को माता भी यही काम करती है, डॉक्टर भी इसी प्रकार का काम करता है, Medical Student भी मुर्दे का Dissection करते हुए यही कार्य कर रहे होते हैं जिनके कि कारण हम भंगी व चमार को अछूत समझते हैं। असल में ये भी मनुष्य समाज के मुख्य और अत्यन्त उपयोगी कार्य हैं। इनका होना भी अत्यन्त आवश्यक है अतः इन कार्यों को करने वाला समाज का अंग किसी प्रकार भी अछूत नहीं हो सकता। यह बात केवल कहने २ से समझ नहीं आ सकती जब तक कि हम ऐसे कार्य Practically करके न दिखावें।

ऐसा करने से अन्य मनुष्यों के तत्-
त्वों में से एक का भाव उत्प-
न्न और अछूतों की यह बात को
अनुभव करेंगे कि समाज में हमारा
कोई दूषित नहीं।

इस प्रकार हम अपने सफाई की
शिक्षा देते हुए रहन सहन, खान
पान की भी शिक्षा दे सकते हैं।
इसी प्रकार आगह सब बहुत प्रकार
[illegible] के अंदर है कि हम अपने प्रति
अपने मन की कल्पना को [illegible] सकें।

Concluding Remark:-

आज में स्वधर्म के ठेकेदारों और धर्म
के नाम पर मन्दिर में [illegible] ढोंग रचने
वालों के नाम पर फिर वह ऐसा
चाहते हैं कि इस प्रकार के काम में
[illegible] धर्म के प्रमाण देते हैं केवल
काम न आवेंगे। जिन्होंने उनके [illegible]
[illegible] पर उनके [illegible] को कुछ
भी असर न होगा। क्योंकि आज दुनि-
यां उनके पाखण्ड को समझने लगी
है। [illegible] में इसकी आड़ में सब कर
सको [illegible]। (आप उनके आराध्य दे-
वों राम-कृष्ण आदि को ही ले लीजिये
समाज के अपने अनुयायियों के इस
युक्ति से पश्चात्ताप ही करते हैं:- आ[illegible]
राम ने शबरी-भिलनी के जूठे बेर न
खाये थे। ~~[illegible]~~ — इन मोटे २ उदाहरणों
से उन धर्म-ध्वजों को इसके विरुद्ध
बोलने का कोई मौका नहीं होगा।
केवल सवाल रह जाता है अपनी [illegible]
शालता का और देश की स्थिति की
अनभिज्ञता का। इसके लिये हम

उपसंहार

ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें सद्बुद्धि दे और उन्हें उनके अज्ञान को नष्ट करे जिससे कि वे इस महत्व पूर्ण कार्य के विरोध के स्थान पर इसकी स्वीकृति करें।

आक्षेपों का उत्तर

श्री प्रो: लालचन्द्र जी M.A.

हम ब्रह्मचारी तथा धर्म-
चारी नहीं हैं जो हमें
होना चाहिये। इसीलिये
लोग नाना प्रकार के आक्षेप
करते हैं। एक कहता है
कि गुरुकुल में से नामी
नामी कितने पैदा हुए
हैं। हम कुछ जवाब नहीं
दे सकते। दूसरा कहता
है कि गुरुकुल से ज्ञानी
कितने पैदा हुए हैं।
हम कुछ जवाब नहीं
दे सकते। तीसरा
कहता है कि गुरुकुल से
विद्वान् लेखक कितने
पैदा हुए हैं। हम
कुछ जवाब नहीं दे स-
कते। चौथा कहता है
कि गुरुकुल से कोई
कितने निकले। हम
कुछ जवाब नहीं दे
सकते। प्यारो! कुछ
से एक गुरुकुल के भक्त
ने काल हुए प्रार्थना की थी कि
लोगों के ऐसे ऐसे आक्षे

को का मुंह तोड़ उत्तर दूं। यदि मैं यहां का ब्रह्मचारी होता। यदि मुझे गुरुकुल में शिक्षा पाने का सौभाग्य प्राप्त होता और शिक्षा प्राप्त करते हुए मुझ से कोई ऐसे प्रश्न करता तो जरूर मैं कल, मैं से कम से कम एक प्रश्न का जवाब तो दे के बताता या गामा ही बनता या गांधी ही बनता। या बनता कोई इकबाल महान ॥

मैं यह नहीं कहता कि ब्रह्मचारियों ने इन प्रश्नों का जवाब बिलकुल नहीं दिया, दिया तो है पर बहुत थोड़ों ने दिया है और मुंह तोड़ जवाब तो बहुत कम मिले हैं। शहीद श्रद्धानन्द के शेर पुत्रो। अपने स्वरूप को पहचानो। जैसे वह मंजे वैसे तुम-मंज सकते हो। जैसे वह चमके वैसे तुम भी चमक सकते हो। टटोलो अपने अन्दर कि तुम्हारी शक्ति किधर है, उधर बढ़ो उधर कमाल करो, और लोगों के इन सवालों का मुंह तोड़ जवाब दो और अपने कुल की लाज बचाओ। वह बड़ा

आक्षेपों का उत्तर

अभागा है और अमृत के सागर में १४ साल है पर प्यासा और व्याकुल बाहर चला जाता है अगर कोई ऐसा जो नतो बहुत विद्वान् न बहुत बलवान् न बहुत बड़ा धनि न बहुत बड़ा वंश न बहुत बड़ा लौकिक बन सकता तो कम से कम सच्चा, और सदाचारी तो कमाल का बन सकता। यह रास्ता तो उसके लिये सदा खुला ही है।

एक राजा ने आज्ञा दी कि दो चित्रकार बुलाए जावें और दो दीवारों पर चित्र बनाए जाएं। एक, इसके लिये एक चित्रकार तो प्रसिद्ध मिल गया, दूसरा एक ऐसा आ गया जिसने कभी चित्र बनाए ही न थे। राजा ने यह कह दिया था कि जो बढ़िया चित्र बनावेगा उसको इनाम दिया जायगा

होशियार चित्रकार ने सो-
चा कि यह अनाड़ी कहीं
अच्छी नकल न कर-
ले उसने अपनी दीवा-
र के आगे पर्दा डाल
लिया। लो अब -
दोनों अपने अपने का-
म में। होशियार चित्र-
कार ने तो बहुत कमा-
ल के चित्र बनाए। फू-
ल फल लताएं पक्षी
फले कुंज इत्यादि
सब अच्छी तरह दीवार
पर बना दिये। उधर
अनाड़ी केवल दीवार
को रगड़ता रहा

जब चित्र बन गये तो
राजा मंत्री को साथ
लेकर चित्र देखने -
आया। जब राजाने
प्रवीण चित्रकार का
चित्र देखा तो चकित
होगया। कौन कहे
इनाम इसको मिलना -
चाहिये। और मंत्रीने
कहा कि दूसरे चित्रकार
का चित्र पहले देख तो
लीजिये फिर फैसला -
कीजिये। अब पर्दे हटा
दिये क्योंकि अब तक
ल भी कोई सम्भावना
ही न थी। पर्दे

आक्षेपों का उत्तर

होते ही जब राजा और
मन्त्री ने सामने की
दीवार पर नज़र डाली
तो वही का वही चित्र
अधिक सुन्दर रूप में
दीवार के अन्दर दी-
खा। अनाड़ी ने तो
केवल दीवार को रगड़-
ड़ा ही था मगर इतना
रगड़ा था कि वह
शीशे की तरह साफ
हो गई थी और दूसरा
चित्रकार चित्र बहुत
उत्तमता से उसके
अन्दर प्रतिबिम्बित
हो गया। क्यों कि
अत्यन्त ज्यादा सुन्दर
था असली से। इस
लिये अनाड़ी को इना-
म मिल गया। मतल
ब यह है कि किसी
को निरोग होने की
आवश्यकता नहीं
जो निरा मैं या केवल में
मन में कमाल कर-
सकते हैं वह तो ध-
न्य हैं। वह तो अपना
अपने कुल का नाम

गेवान होते ही मगर
जो उन बातों में कमाल
नहीं कर सकते उनके
लिये एक मार्ग कमा-
ल का सदा खुला ही-
है और वह है मांज
मांज कर अपने आप को
साफ करना। भजन सि-
मरन द्वारा अपने आप को
सर्वथा शुद्ध कर देना,
पूरा सच्चा बनना, पूरा
ब्रह्मचारी बनना, मुक्तिजी
बनना। प्यारो! हमें
वह अवसर नहीं मिले
जो तुम्हें मिले हैं।

प्रकृति माता की गोद
में पल रहे हो। इस माता
में अनन्त शक्ति है इस
शक्ति को धारण करो
जिस बात में कमाल कर
सकते हो कमाल करके
दिखाओ, हम लोगों के
आलोचकों का मुंह
तोड़ जवाब दो। तुम सब
कम से कम् एक एक
उनका मुंह तोड़ जवाब
बन जाओ। लोग तुमको
देखें तो कहें धन्य है
वह माता है जिसने ऐसे
लाल पैदा किये। बोलो गुरु
महाराज की जय।

कुलपुत्रो! गंगा की रेती में कितने घर बनाये?

ले. श्रीपाल

"छः-छः पैसा, छः-छः पैसा" करती हुई गाड़ी ज्यों ही हरिद्वार के स्टेशन पर आई, एक लाल-पगड़ीधारी लम्बे चौड़े जवान ने हमारे डिब्बे के दरवाज़े से झांककर आगे झुके-झुके ही पं. विष्णुमित्र जी से पूछा कि "म्हारा, जिन कुलदेशर के ते तुस्सयों आन्दे हन? ए बरमचारी आपे ई है न। पीलियां तोलियां लाये।" गुरु जी ने (पं. विष्णुमित्र जी को हम लोग गुरुजी कहा करते थे) मुस्कराते हुवे अपने लम्बे 2 ~~बालों वाले~~ साधु बाबा से बालों में (जो कि धूनी से उठते धूवें के गुब्बार के समान बल खाये हुवे थे) उंगली फेरते हुवे कहा— "आहो, जी।" बस चलो ओ पहरा देवी चन्दा

'ह समान चक्कू के बाहे कम्पने ले चल का अपना टेलीफून दे गया। वह देखो चन्द स्वयंसेवक भी बरन के दबते ही बिजली की गति के समान आया; और उस हमारे सारे समान को एक जगह बांधकर आहिस्ते से कन्धे पर उठाकर ऐसे ले चला जैसे हनूमान गन्धमादन दूसरे दर्जे के फाटक के बाहर निकलते ही हमें अनगिनित बिल्ले धारी आदमियों नमस्ते की मधुर सलामी दी"। हमारी आराम सामग्री को देखते-न-देखते ढ़ो लगा दिया। मैं तो फूला न समाता था क्यों? तीसरी श्रेणी में जब हम एकबार दिल्ली यात्रा गये थे तो हमारे एक अनजान अधिकारी-पठित अनजाने में चांदनी चौक की एक दूकान के सामने अपने सहज स्वभाव के कारण व प्राकृतिक शक्तियों

से द्वन्द्व युद्ध में पराजित होने के कारण लूसी के सुन्दर प्रकाश में बेशर्म बैठ गये थे तब उनका यह नहर का उद्घाटन शायद मजिस्ट्रेट की परमिशन बिना हो रहा था, इसलिये सामने से आते हुवे एक बिल्लेधारी दानव ने लात मारकर 'फक्का गुर' कहते नाली में गिरा दिया था। अब सब उस समय कादम्बरी के शुकनास पोपट की तरह भय से काँपते-काँपते अपनी जान की खैर मान रहे थे। वे ही पुराने भीति-संस्कार दिलपर इन बिल्लेधारी व्यक्तियों के लिये आजतक बैठे हुवे थे। आज उन्हीं के सामने अपना शहजादे सी-आवभगत देखकर हम फूले न समाते थे। कोई छोटी-मोटी से आकर हमें यह पता लगा कि ये आज के बिल्लेधारी, नौकरशाही के गुलाम-सिपाही दानव न थे, बल्कि राष्ट्र के स्वयंसेवक गण थे रखवाले देव थे। हां तो फिर हमें

बड़े ही स्वागत-सत्कार के साथ बेलगाम के तांगे में लाकर बैठाल दिया गया। साथी ने ठौर देकर हम बैठ गये तो वह भी कुछ का तांगे के अगले भाग पर आ बैठा और "चलो बेटा"। हुकमचन्द का हुक्म दे तांगे को हांक ले चला, जैसे कभी मातली इन्द्र के रथ को। कुछ ही आगे बढ़ने पर एक बड़ा फूल पत्र-पत्तियों से सजा उस पुरी की रचना करने में प्रयत्न किया। उसे पारकर चलते-चलते न मालूम कितने एक धर्मशाला सी के पास जाकर रुके हम। इसी बीच कुलाँचे भरता हुआ सारे यात्री नौजवान भी स्वागत की तरह हमारे उस तांगे के पास आ डटे और "सतीजा 'सा-ब' ओ-लो-के कुलदेवता वालों का सामान उतारो-मायापुर के नाम तब पहुंचे। पण्डित जी ने लाल जी भी........। संस्मरण-ओले ठाकुरी तुमसे याद नहीं पहचानता। मैं आया, बेल नहीं कर फिर वही देखी टेलीफुन के नाम। मैंने जरा बढ़ अपना 'गंगाभक्त' के कवि श्रीलालकर जी का प्रति इकट्ठी देह संभालते हुए भी-

फुलझड़ी ! समुद्र की रेती में कितने घर बनाये

उड रहे थे कि उनके मनमाफिक की तरह पवित्र अपने कन्धे पर लेकर- कर मायापुर की सीढ़ियाँ चढ़ते थे [illegible] । जिसने इतना पर हमें लोगों ने चाहा "ढूंढ़ा पर तेरा पता भी पुराना है [illegible] लोगों ने बड़ी बहुत हो गया" । आज मथुरा- मायापुर से हरद्वार ही थी कि - 'लाइन-लाइन' नाम जंगल की चौड़ी सड़क पर दौड़ता जाता । जिसकी राहों कितने लोग किए, पर [illegible] देवता [illegible] जरा जानते लोगों आगे-पीछे की [illegible] सुन्दर रस्ता देखो, सड़क के किनारे [illegible] जाता बनाती, और एक-एक इस [illegible] की तरह उनके लड़खड़ाते देखो तो मन रचना में [illegible] जाता था जैसे कुमारसंभव के प्रेम राजा दुष्यन्त का प्रेम कालिदास की अद्भुत आँखों में । रेल के कारण हमें इस ओर पल में कुछ भेद न लगा उनका था । पुष्पक विमान में बैठे श्री राम को जैसे सभी चलते थे के

आदमी नज़र आए लोगों, उन्होंने उस बाजार की दावत पर के आदमी बैठे ही ऊँचे पड़े । इसकी अगल-बगल नये अप-टु-डेट (up-to-date) शब्द में कहूँ तो [illegible] के झूले, इस- लिए इतना उत्तम न दे सकते थे, [illegible] इसके [illegible] बाल खिलाकर, रात भर [illegible] से और चौराहे तक [illegible] से, [illegible] गंगाजल के [illegible] दीवाना, [illegible] विशेषतः के [illegible] शर्मा के [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible]

पर हम भी जानते थे कि आर्य-समाज के मतानुसार सब चीजें ससीम हैं, एक परमेश्वर ही असीम है। इसी लिये कामानन्दमी जानकर लोग समझने की भी सीमा आयेगी ही। सीमा आवेगी तो जरूर पर यह कौन जानता है कि आज या कल में आयेगी ? या लाख जन्मों बाद ही जाकर आवे ? तो ? और; इस दर्शन में हमें अधिक माथा पच्ची न करनी पड़ी- सामने के एक पर कोटे से दफ्तर के मन्दिर को पार कर ज्यों ही जरा उतरे तो ऐसा जान पड़ा मानों नील आकाश तारों सहित हमारे सामने बिछ पड़ा है। रेती-पत्थर का विस्तृत वह मैदान ऐसा दीखा "जैसे आकाश की गंगा ही बोझ के मारे धम से नीचे आ पड़ी हो। उस के अनगिनित तारे चूर चूर होकर बिखर गये हों। रेती पत्थर के इस धरती के आकाश में नीली गंगा, श्वेत-काली के बीच आसीन धवे २ बादलों की तरह उमड़ी घुमड़ी बही जा रही थी। वे नन्दीश्वर वृषभ युगल काली की चोटियों की आलवार इसी का जिक्र कर के यही अपना शकट [illegible]-

साथ जोड़ कर खड़े होगये, हमारे भगतजी ने बड़े २ उपचार किये, राम राम, भैरव दण्ड निग्रह सभी करते, अपने उनके लाये-पाये के बहुत सी बीड़ियों के बीड़ते भी बनाये, फिर हनुमान चालीसा का [illegible] वालों को प्यार [illegible] भी उनकी सेवा में पूजा के लिये भेंट किया, पर वे नन्दीश्वर महाराज तो जहाँ एक शिव भगवान की तरह स्थापित होगये थे कि टस से मस न होते, आखिर उस भगतजी को बुद्धि-प्रेरणा हुई उसने उन देव वृषभ के कन्धों पर से शकट का जुआ उतार कर अलग रखा और उनको भी भगवती गंगा की तरफ नीचे को ले चला उन नन्दीश्वरों ने उस अमृत के प्रवाह में पहले मुंह नीचा किये कुछ मिनिट गुजारे मानों भगवती गंगा को माथा-झुका प्रणाम किया, और फिर भगवती के उस करुणामृत का पानी कर के अलसाई सी आंखें कर पान करने लगे। और सारथी इशारा देता रहे कि वे कुलांच भर कर चपल चल, चपल चल धार में कूद पड़े — [illegible] के मारे एकाकार होने के लिये। हमारी मन्दरों की टोली तो किलकारी मार कर कूद फांद मचाने लगी इतने में क्या देखते हैं कि हम सी ही किली २ [illegible] जिसे कि [illegible] झुलाते हैं कुटियों की भागी करते हैं, [illegible] के कुछ बड़े ब्रह्मचारी आये और [illegible] देखते ही "कौपीन वन्तः खलु भाग्यवन्तः" के कौपीन धारी होकर के वहीं "भगवन, भगवन

पानी में कूद पड़े और गंगासागर की उन उर्मिमालाओं को अपने सबल हाथों धकेलते हुए वे सागर के सब उन नन्दीश्वरों की धवल पीठ पर आरूढ़ होकर महादेव के समान शान के साथ खेल मचाने लगे। हम तो उन महादेवों की तरह लीलाओं को देखकर बुत बने रह गये। श्री आचार्य रामदेव जी के ~~इतिहास~~ 'भारत के इतिहास' की लाल जिल्द वाली पुस्तक में जो हनुमान का समुद्र को तैर कर लंका जाना लिखा पांचवीं श्रेणी में पढ़ चुके थे, वह आज सत्य दीखने लगा। जितने में मैं सोचूं हनुमान खेल खिलवाड़ कर उन नन्दीश्वरों को नहलावें खिलावें, हम लोग के लोग उत्सुकता के मारे गंगा की ओली रेती तक आ पहुंचे। इन कूप मंडूकों में से एक किसी 'गंगादत्त' ने हिम्मत बांध कर गंगा का पानी छुआ और 'गंगे गंगे' की तरह, "नाके नाके गङ्गा की प्रतिज्ञा झोली से भी छोटा हूँ।" कहता हुआ आगा का आगा कूद चुल्ली पानी अपनी ~~अंज~~ अंजली में भर हमारा तर्पण करने को आगे आया। तर्पण करने को इसलिये कहा कि उन हनुमानों को गंगा के एक विशाल समुद्र में तैरते देख हम बुत बने ~~खड़े~~। आज मरे से हुए ही खड़े थे। उसकी अंजली का पानी छुआ तो मानो प्राण संचार हुआ। अब हम में भी बाल सुलभ चपलता जागी। हम सब उत्साह के साथ आगे बढ़ कर पानी हाथ में लेकर हर हर गंगे कहते हुए अपनी अंजली के पानी को एक दूसरे पर छिड़क छींटे करने का खेल मचाते, गंगा को बाहर उछालते इतने में इतने में हमारे साथी ने जो कुरुक्षेत्र के कमलों वाले कुण्ड कमर कमर जितने पानी में तैरने में भारतीय तैराक सौवीन चालों को मात दे चुके थे।

उन्होंने अपनी प्रसिद्ध 'मधुर
मुस्कान' के साथ एक गिलास
भरे किनारे पर का ही पानी
और मुंह में रखा तो चिल्ला
उठा। "परम पावन नाथ की हवेली
के आंवले पानी में घोल दिये हैं
अपनी प्रतिभा जैसा इसकी परतों
पर आंवले लोग पर पानी पीने
का मीठा जायका आता है न,
सच्ची जैसा ही इस पानी का है।"
हमने कहा, "अच्छा बड़े गुरुजी
की प्रतिभा लाओ।" उसने लाली
तब भी हमने अविश्वास करते-करते
धकेले के डर से अपनी-अपनी
चालाकी से पानी पिया तो सचमुच
आंवलों पर पिये जल का सा मीठा
जायका पाया। अब क्या था!
लगे हम अगस्त्य की तरह गंगा
सिन्धु को पीने। पीते-पीते पेट की
मशक भी भर आई - नसें उठ आईं।
तब जाकर यह नाम अगस्त्या-
भिरूप सम्पूर्ण हुआ। खैर,
गंगा की जान तो बची। इधर से
ध्यान हटा तो देखा एक कोई

नईचिन्ह जैसे यंत्र के
आविष्कर्ता के तरह हमें
पानी में पड़ी किसी चीज की तरफ
इशारा करते हुए कह रहे हैं।
'वह देखो बादशाहों के नन्हे-नन्हे।'
हम अपनी आंख की दूरबीन उधर
लगाने पर कुछ न पाते। 'कहां है
यूं ही।' "चल झूठा।" कह-कह कर
उसे दिखाते। कि वह प्यार से
पी-पी कर इसके लड्डू
खिलाता। लीजिये हरदोई वाली
देखिये पानी में पड़ी वह
कुछ सफेद काली सी
वस्तु पत्थर की चमकीली
टिकियाओं को दिखाने लगा।
जो पानी में हैं पांती लगाये
थीं। जैसे मानो गंगा का
दूध पीने आतीं उसकी छोटी
बछड़ियाँ कुलांच मार-मार
खेलती कूदती इधर से ही
उभरती अपनी छोटी-छोटी
खुरों को दिखा रही हों,
हों। इन सब को देखकर -

बड़े प्रसन्न हुए। और ला ला कर इन पत्थर की टिकियाओं को कोष जमा करते लगे। अफ्रीका के सोने के खानों के व्यापारी भी सोना इकट्ठा करते इतना प्रसन्न न होते होंगे। जितने हम सब उन बदसूरत टिकियाओं को चुनने में अपने का भूला बैठे थे। हमारे इस बालपन के भोलेपन पर काशी के नदी खराके महादेवगण हंसते २ लोट पोट होने लगे। एक ने तो पेट में बहुत देकर इतना हंसा कि नन्दीश्वर के पीठ के ककुद को पकड़कर भी वे काबू का होकर पानी में आ गड़ा। वैदिक धर्म का कर्मफल का सिद्धान्त अमर रहे कि उसे हम पर हंसने का तत्काल फल मिला। और मैं इतने में उधर से आँख बचा कर गंगा का उत्थान पतन देखने में मस्त हुआ। धीमी २ चपल अधर जल गंगा की धार को धार को लहरा देती थी। तब देखते ही बनता था। मैं खड़ा २ इस दृश्य के लिये उपमायें ढूंढने लगा जैसे कभी गुरुकुल के व्याकरण छोड़ निराले पंथ के मुरारी कवि ब्रजनाथ जी के दर्प देन के लिये 'द्रुपदस्य स्वर घोषित कर्ण कम्पन घोषित' की उपमा देते हुए अपने कुमार होने का परिचय दिया था। ऐसा ही कुछ हास्यास्पद प्रयास मैं भी करने लगा मस्त सा होकर मैं ने भी-

कर चहचहाने लगा," हाँ, जैसे
गाय की सफ़ेद सफ़ेद पीठ अचा-
नक कंपकपी खाकर हिल जाती
है, वैसे ही तो यह गंगारूपी
गाय कंपकपा रही है;" और
नीचे साफ़ पानी में आसमान
का जो अक्स उतरा बार बार
काँप जाता था। उसे देख मैंने
कहा "अरे दीनू जैसे कण्डील
बनाने के नीचे कागज़ों से
बना गुब्बारा नहीं पाते खड़
खड़ लहरा जाता है। अब इन
उपमाओं के गुण-दुर्गुणों को
आप चाहें कोई धोबी-ग्वाला
करें या पतंग गुब्बारा बनाने वा-
ला जोलाहा या कोई ख्वाज़ा-
साहेब समझें। आप जैसा भी

चाहें नाम करण संस्कार का जश्न
मना करें। हाँ, एक बात तो भूले
ही जा रहा था, गंगा की कंप-
कपी पर मुझे एक और उपमा
उसी वक्त प्रत्यक्ष हुआ था। गु-
लिये, उसी समय मेरे पीठ पीछे
आकर एक साथी भाई ने एक
छप का भींगा हिस्सा मेरे कन्धे
पर से ले जाते मेरी आँखों पर
इस तरह से रखा कि मैं एक
परमानन्द के मारे कंपकपा गया।
वैसे ही जैसे घर में बहुत पो-
सेते कभी २ अपनी प्यारी बहिन
से पीछे से आकर अचानक आँ-
खें बन्द कर दिये जाने पर आ-
नन्द में कंपकपा जाता था। मु-
झे दीखा कि गंगा भी इसी तरह की

कोई कंपकपी ले रही है। इस मेरे शास्त्रोपमान पर आप चाहें लोग जैसी चाहें 'साहित्य-रवि' की अलंकार सृष्टि किया करें, और चाहे जैसे ही 'किशोरीदास जी वाजपेयी' को मात करती उसकी टीका किया करें। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं। ऐसा श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महराज अपने सत्यार्थ प्रकाश में कहीं लिख ही गये हैं। सो आप भी जीव जन्तु होने से स्वतन्त्र हैं। अच्छा तो कंपकपी का ही प्रताप समझा रहिए तो बाकी की सतरह पुराणों तो फिर आपने मन्वन्तर में भी सुना सुनाया है, तो इसी समय योगाड़ी

वे पीताम्बर धारी दयालु भाई हमारे नन्दीश्वरों को समाधान कर जब बाहर लेकर आये तो हमारी उस बन्दर टिकिया के खजाने की टूटी का उपहास उनके दर्जे में था। "देखिये जी, मेरा पत्थर नहीं देता भाता जी मुझे पे मुँह बना कर चिढ़ाता है" की फरियाद की। इस पर अभिभूत बाप बोला, "अरे स्लोकी! मास्टर जी का लड़का! अपने आप तो मेरा पत्थर पानी में उधर फेंक दिया था"। उस भाता जी ने देखा मैं उकड़ूँ बना तो एक है कि स्वयं रचना निज साहित्य भी न्याय करने कौन ले पार न पावें। बस बुद्ध-ज्ञान देख बुद्ध पानी में उतर मेहनत

कुलफुलें ! गङ्गा की रेती में फिसने पर कलके

से खूब सारी पत्थरों की टिक्कि-
याँ लाकर उस गड्ढे को दी।
तो वह बोला "मैं तो नहीं देखता
ऊँ - ऊँ"। अब बेचारे दादा जी
अजीब फंद में पड़े। उन्होंने तब
क्या फैसला किया होगा। कु
छ इतने सालों बाद आज याद
तो नहीं आता हो। हां आप एक
कल्पना तो कर सकते हैं; पंजाब
केसरी रणजीत सिंह के छोटे या
बड़े भाई लाला मोहन राय
जी शायद अभी बीच, गामा
के सामान का कुछ प्रबन्ध कर
नहीं सिंहनाद नाद करते आ
पहुंचे थे। उन्होंने संभव है
पहले के कुछ बौद्धिक बल प्रदर्श
करके लाहौर के सौराल कि

भूतल का प्रतिशाभिनय कर, हां
आताभिनय के षड्यन्त्र को मात
किया होगा। अभिनय के बाद
जैसे [illegible] के साथ तम्बू, क-
नात, बल्लियाँ गड्डे पर लाद दी
जाती हैं; हम सब भी गुड़ रप-
काये, अपनी सारी पत्थर की
डीरक [illegible] लदी गाड़ी पर लद
गये। खैर, तांगा अब फिर उसी
पुष्पक विमान को लज्जा देने वाली
गति से उस रेतीले मैदान में
दौड़ने लगा। हमारा मन भी
इसी तरह कहीं ऊंची उड़ानें लेने
लगा। बच्चों का कल्पना, और जाड़ों
से भीगा [illegible] लेकिन कहां है? इस
पर्वत की धवल ऊंची चोटी होगी जो
शरद ऋतु के सफेद धुने बादल सी
दिखती थी। पालने से हम जिसे
देखने को तरसा करते थे, आज
इतने समीप देख हृदय में गुदगुदी

आजकल

होने लगी। इतने में एक लाल-बुझक्कड़ से रहा ही न गया, वह बोल उठा, "हो-न-हो, इस विदेश में आ पहुँचे हैं। ग्रन्थ की तीसरी किताब में हेसिंग्स्टन साहब ने मिस्र के पाठ में जो पिरेमिडों का चित्र दिया हुआ था, ठीक वैसे ही तो ये ऊँचे ऊँचे मकान, जिन्हें [illegible] तुम पर्वत कह रहे हो, दिखते हैं। जिनको ये हमारे पथ [illegible] हैं-वह मिस्र की मशहूर नील नदी ही है। वहाँ के रेगिस्तान को ताजुब पार कर ही रहे हो" वह बेचारा नाम्य [illegible] भी न जानता था कि एक और पं. बुद्धदेव जी के आर्य (सभा में बोलने और बे-चिल्लाने की बैर पढ़ने [illegible] देने से इसने इनका स्कूल में से नाम दिया था।) बोल उठे मियाँ जी के किस्म के ही फिरी वाले ठुपके आते हैं। भई! दयानन्द जी के जीवन चरित में बड़े गुरुजी ([illegible] पं. निष्काम जी) ने इसे नहीं पढ़ाया था कि दयानन्द जी पहाड़ों में योगियों की खोज में फिरा करते थे।

आबू पर्वत की लम्बी खोह में उन्हें कुछ योगी मिले भी थे। तो इस से क्यों न मानें कि ये आबू जैसा ही कोई पहाड़ है?, क्योंकि उस बेचारे ने अभी 'क्योंकि, परन्तु और प्रश्न करना' चाहा ही था। पर मालूम पड़ता है, उनकी इस कल्पना से प्रभावित हुए एक और विद्यार्थी [illegible] भारत से लग भग बोल उठे, अर्थात् योगीश्वर दयानन्द जी महाराज ऐसे ही अमर योगियों से मिले होंगे, उनके साथ रहे होंगे, वे उन्हीं लोगों की ऊँची-नीची कोठरियां हैं; [illegible] इन्हीं का [illegible] होकर पर्वत पर [illegible] और उनमें एक प्रकाश से भी [illegible] इन सारी कोठरियों के बीच जो बड़े-बड़े मन्दिर बना है, वह ऋषि दयानन्द जी की ही कोठरी होगी। ऋषि दयानन्द योगि-योगियों में सब से बड़े योगी थे, अतः उनके सत्कारार्थ उनकी कोठरी बड़ी तथा सबसे ऊँचे स्थान पर बनाई गई होगी। [illegible] ज्योति [illegible] है (By [illegible] एक अचंड उम्र के ऐतिहासिक-[illegible] की धुन में मस्त, [illegible] प्रिय साथी, एक अजीब ही-

उलझन में उलझे थे। वे — पांचवीं श्रेणी में प्रवेश कर — "सोऽहं क्रियाविशुद्धात्मा प्रगल्भोद्-सिद्धिलितः। प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः" ये श्लोक अभी कुछ ही दिन पूर्व पढ़ने की गल्ती कर गए थे। पहाड़ के एक तरफ रोशनी धूप, दूसरी तरफ — कम मायावी शान्त छाया थी — लिहाज, वे कहने लगे कालिदास — सचमुच कविकुलगुरु थे। आदमियों की निगाह में कौन पकड़ता था सकता है? देखो, पर्वत के लिए "प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः" की कैसी सार्थक पंक्ति लिखी है। हो-न-हो कविकुल-गुरु महाकवि कालिदास ने यह श्लोक इसी पर्वत के लिए इसी जगह - इसी जगह पर बैठकर लिखा होगा। निश्चय से, कालिदास की जन्मभूमि, कर्मभूमि यही — लोकालोक, वाला शब्द का पवित्र प्रदेश है। बंगाली पण्डित-गण भी "आपदपद्म प्रणताः कमला इव वे प्रेम। कहाँ ... समाप्तः उत्पातप्रतिरोपिताः" का-दास भक्त लोग कालिदास को — बंगाली सिद्ध किया चाहते हैं। उन मूर्खों से पूछो कि क्या बंगाल में भी भाव होते हैं? सारे-हिन्दुस्तान, सारे बर्मा, सारे चीन, सारे जापान, सारे योरोप, सभी तो भावपाटी हैं। यदि इस श्लोक के 'कुलजाः' की आपत्ति की आदि के मुताबिक भी वैसा मानते हैं, तब आप करें। तब तो बेचारे कालिदास को एक हिन्दुस्तान की कलम न मानकर चीन में या जापान में जाकर ही रहना पड़ेगा। भारत से तो उन्हें देश निर्वासित ही मिलेगा" और यहीं के एक दूसरे चचेरे भाई कालिदास के कन्धे पर बैठा-जाना, और टांग से पकड़-कर रहे २ काश्मीर की घाटि-यों में खींचे लिये जा रहे हैं। इन भले मानसों से पूछो, कि क्या कैसर के कालिदास के सिर पर लगाने की धुन में उनका प्राण पखेरू ही उड़ा देना है। अरे! इसी पर्वत पर "बैठकर उन्हें, एस. के. बेगर

जितना चाहे रंगो-चंगो। कौन मना करने चला है! और ये पांच सकों के तमाम इतिहासकेत्ता कहलाएँ, उसे श्री बाबू काशी-प्रसादजी 'जायसवाल' जाने या फिर हिन्दी के इतिहासज्ञ के सौभाग्य श्री प्रो० सत्यकेतु जी 'विद्यालंकार' या फिर कोई बीसो इतिहासलेखक! अपने राम के लिए तो ये मापदण्ड ऐसी ही हैं जैसे चूहों के लिए नौजवानों की कथा-कहानी।' आज इतने ही से हमारा तांगा कुनबा काफ़ी एक पुल के फ़ाटक पर आ रुका। माली ने लाकर जंगले चपरासी ने उनका इसके तांगे का महसूल मांगना ही चाहता था कि अन्दर से आवाज़ आई: 'पुजारी, इनसे महसूल नहीं; चीनी चोटियाँ देखकर भी नहीं पहिचानते। लाला जी ने सब लगवाती हैं क्या? इसका तांगे वाले ने भी आकर न कहा "माजी कहीं भी! ऐसा अकड़ा खड़ा था जैसे लाट साहेब का बजाना हो। पता नहीं, औरंगजेब के बुलावा गुरुकुल वालों का महसूल माफ़ है। जब देखो, तब तंग करते हैं। अदि अब नाम डुबा। महता जी के स्पष्ट लिखेंगी तो बेचारे के पेट ऐसे ऐंठेंगे कि खोपड़ी तिल का मूल बन जाएगी।" हमारे माली को गर्म होते देख म-पुल का फाटक कुबेर अर्थात् खजानची खुद आगे आया, और माली को कहता हुआ बोला, भाई! माफ करो, गलती हुई, पहचाने कैसे मांग बैठा। "फिर कुबेर साहेब ने हमारी तरफ़ हँसते हँसते 'नमस्ते ब्रह्मचारियो' कहके पूछा 'क्या आप लोग कुरुक्षेत्र के गुरुकुल से आये हैं?' उत्तर में हम सब ने अपने अपने मस्तक हाथ उठा दिये। वह-खजांची तथा काइयाँ के कुछ-और उकाबी जो इसी क्षण-वहाँ आ पहुँचे थे, इस हमारे हाथ उठाने की कवायद को देखकर हँस पड़े। खजांची ने मिल अपनी हँसी को रोकते हुए फिर कहना प्रारम्भ किया, अच्छा जी।

आनन्दकाल

मास्टर हरिगोपाल की चोटी पर चढ़ने
में पहर नहीं मिला तो न-सही,
लेकिन हमारे दिमाग़ में ये बात
हज़ारों - शीर्षासन करके भी समझ
न आई कि अगर पक्षी यदि मास्टर
जी आज्ञा न देवें, तो कैसे स्थान
छोड़ सकते हैं? वह क्या इतने
भी बड़े कोई चीज़ हैं? सुलेशन के
बाद मास्टर जी ही तो सकते थे
हैं, या फिर बड़े गुरु जी - या लालाजी
जी। — आज भी जब इतना बड़ा
होगया हूँ तो उन दिनों के शासन
को याद लाते यही कहने की इच्छा
इच्छा होती है कि, हो सकते हैं तब
सृष्टि के सर्वाधिकारी श्री
[illegible] जी ने मास्टर हरिगोपाल
जी के विरुद्ध कोई आर्डर निकाल
कर चील कौवे व चिड़ियों को —
आकाश के आसन से गोल-मिल
[illegible] दिया। अच्छा लगेगा हम
जीवों को अधिकारियों के झगड़े-
टण्टों से क्या लेना? कोई —
[illegible] [illegible] [illegible]
भी इन झगड़ों से निपटे तो निपटें।
दिल्ली के पशु-पक्षी - प्रकृति के कुरु-
क्षेत्र के मैदान में आप काफ़
और किताबों, के इतने अर्थ
[illegible] को जोड़ कर [illegible]

हैं। संपूर्ण सृष्टि भी [illegible]
के चंचलता के साथ [illegible]
जैसे कोई [illegible] के [illegible]
[illegible] रहे थे, [illegible]
के [illegible] लगे। जैसे
बछड़ा 'माँ' की याद में!
तेजी के समय चारों ओर
के नदी नाले [illegible]
[illegible] के पीछे भी नाली [illegible]
[illegible] लगे। नदियों
के टुकड़े छोटे-छोटे पहाड़
नदी के किनारे [illegible]
[illegible] से ही [illegible]
[illegible] बड़ी देर [illegible] में
[illegible] से [illegible]
[illegible] के [illegible]
[illegible]
लगे। [illegible] की [illegible]
[illegible] पड़ा
कि हम किसी [illegible]
[illegible] में पहुँच गये हैं
लाल-लाल [illegible] पेड़ों पर
[illegible] लटक रहे थे जैसे
[illegible] के [illegible]
[illegible] के [illegible] में

आवरण

सारे ज्ञान के हम ही ठेकेदार!

कुछ ही अरसे पहले थे कि भगवान के नरहरिनारायण गंगा में अवतीर्ण हुए पांडेजी। उनका एक दावा था जो कि संजीवक बैल की तरह रोज, आज भी मुक्त था, [illegible] नहीं नरहरिनारायण [illegible] पैदा कर रहे थे कि 'एकमेव न द्वितीयं ब्रह्म' अर्थात् अकेला मैं ही इस संसार में बलवान हूं दूसरा नहीं।" उनकी इस अद्भुत प्रतिज्ञा को [illegible] लेकर ही पांडे जी [illegible] के साथ [illegible] चलते [illegible] थे। जब वे भगवान नरहरिनारायण [illegible] गाते तो हमारे [illegible] भी अवतरण [illegible] पूरे [illegible] को पीछे छोड़ते [illegible] एक सीमा पर आ पहुंचे। वहां सीमा के पत्थर की ऊंची सी दीवार पर [illegible] एक [illegible] गाड़ी थी। अर्थात् [illegible] का [illegible] ऐतिहासिक विश्लेषण [illegible] यह [illegible] की [illegible] दयानन्द की [illegible] ही [illegible] होनी चाहिए, [illegible] और [illegible] और [illegible]

[illegible] हैं [illegible] प्रकाश? इसका [illegible] पेश था और 'आर्यमित्र' में आप जानते ही हैं लिखा है कि दयानन्द जी ने [illegible] पर [illegible] नहीं [illegible] ही थी। अच्छा — छोड़िये इन सब [illegible] के गड़े-मुर्दों को। "गंगा के पुरातत्वांक के स्वर्गीय संपादक राहुल सांकृत्यायन से कभी भेंट हुई तो उन्हीं को हम ये मसला सौंप देंगे, और गंगा के [illegible] संपादक रामगोविन्द 'त्रिवेदी' [illegible] ही [illegible] तीन रुपये का [illegible] 'पुरातत्वांक' निकालना हिन्दी के लिए [illegible] के लिए जो [illegible] साहित्य की [illegible] और [illegible] के [illegible] हैं [illegible] की [illegible] इस [illegible] जगह [illegible] सुखदयाल [illegible] अजनबी ही होगी कि [illegible] के एक [illegible] 'श्रीहर्ष' [illegible] ऐतिहासिक [illegible] से ३० [illegible] के [illegible] कालिदास के रघुवंशी दिलीप के [illegible] से [illegible] आकाशचारी रहिमन! [illegible] को यदि [illegible] 'दर्पण [illegible]' [illegible] आगे [illegible] अपमान की [illegible]

आप लोग जरा आराम कर ली-
जिए, सुस्ताइये। थोड़ा सा जलपान
कर फिर आगे जाइये। वहाँ-
खजानची इतना कह कर हमको
एक आरामदेह कमरे के लिए ले
गये था कि हम में से एक ने-
अपना कुछ भी रोग का अनुभव
हुए बिना होने की अपनी बुद्धि
से ही ऊँचे स्वर में कहा "जल तो
हम बहुत पी चुके! भोजन होता
अच्छा है" — मन बड़ा था
संकोच के वे शब्द चौड़े
मानो टंग पड़े। एक मुँहफट
बोल ही तो पड़ा — लगभग —
कुछ भी नहीं हूँ मैं तो। हम तो
दूँ की चोंच में उड़ रहे थे
रहे थे। खजानची ने क्षमा
कहा, खजानची जी बताइये
नहीं। पानी नहीं; मिठाई आदि
का आपको जलपान कराता हूँ।
और वे तो नहीं — और इसी
बीच वह पहला नाश्ता मिठाई का
पत्तल सौगात लिए वहाँ आ-
पहुँचा। हम लोगों ने इधर
कि मगा-मगा कर मुँह चले

लम्बी से लम्बी जीभों का रेती
पर एक रसभीना बदन से ढंग गए
मिठाई परसी गई। हम उस
ने किस प्रकार के ही पत्तलें साफ
कर डाली। ऐसी सफाई की कि
यदि कोई यहाँ विद्यालय के
छात्र उनका अध्ययन किया
तो यह आजकल की थाली-कटोरे
की लपेट, जो आज ऐसी चली
हैं जैसी कि ये कहावत कि जहाँ
से आते होते हैं वहाँ ही जाया
करते हैं" ऐसी बड़बड़ाए जैसे कि
प्राचीन साहित्य के प्रणयगीतों
की आजकल पिछड़ी से पूँछ।
पत्तलें चाट चुके तो एक नौकर
आया और बोला, आपके लिए
उधर जगह साफ कर दी है वहाँ
पर आराम देते होंगे। हम लोगों
ने बेर पर हाथ रखे उधर जाकर
जम गये। बड़ा की जाड़े के दिन
में नींद कैसी! हमारी आँखों
का मुँह पहाड़ की तरह के थे
पहाड़ कि पीनक कि फिर वही
कवि-पुराण छिड़ गया। इसमें
एक सूक्ष्म-दृष्टि ने कहा, भई देखो
यह नील किसने हैं ये उड़ाई है।

पर्वत की चोटी से कुछ नीचे जैसी झील बनी है। इसी दूसरे [illegible] बात को कहते हुए बोले "झील थोड़ी ही है, है ही-[illegible]। बाहिले वाले अनुसन्धान कर्ता ने रोचकता के ढंग से बड़ा हिलना-मिलना तो कहानी है। आप सब को अपने जैसा समझ बैठे हैं। [illegible] महात्मा दिखते हैं तो हम क्या करें? सब कोई [illegible] जैसे थोड़े-ही हैं।" फिर कुछ दूसरा भी [illegible] इशारा था कि [illegible] जाते तो नये, व हाँ दूर की चीज़ को ताकते समय एक आँख को [illegible] करने की आदत भी पड़ गई थी। [illegible] सब इसी [illegible] के कारण "एक-सी एक आँख से देखने वाले" [illegible] महात्मा कह कर [illegible] थे। [illegible] जब [illegible] के [illegible] का [illegible] उन पर छोड़ा गया तो सभी [illegible] हँसने लगे। [illegible], [illegible] उन दोनों महात्माओं को यह बात पर [illegible] करना [illegible] कि "दोनों में [illegible] कौन है? [illegible] की [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि मास्टर [illegible] जी से [illegible] उस वक्त [illegible] [illegible] विद्यार्थी जी

[illegible] में रह गए थे। [illegible] पर जाकर, चोटी पर चढ़ कर हम साथ देख आयें कि वह जो चीज़ उधर है वो झील है या [illegible]? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] हम [illegible] [illegible] के [illegible] से [illegible] या [illegible] [illegible] जी के [illegible] में उपस्थित हुए। [illegible] [illegible] के [illegible] से [illegible] [illegible] हँसते देखे गए वे [illegible] साहेब भी इस बात को [illegible] के [illegible] ही [illegible] के [illegible] हँसी में फूट पड़े। कहने लगे, फिर [illegible] [illegible] झील है या [illegible] तुम्हारी [illegible] का [illegible] हो गया? जो [illegible] [illegible] से नहीं [illegible] [illegible] पगलो [illegible] पहाड़ को [illegible] ४-५ [illegible] दूर समझ रहे थे वह वहां से [illegible] ४-५ मील होगा। वहाँ [illegible] [illegible] एक [illegible] [illegible] [illegible] तब तक [illegible] [illegible] [illegible] मास्टर जी ने [illegible] से आकाश में ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]- जैसे कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible]- [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] —

आत्मकथा

इसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा जब "मम मन प्रसन्नम् नम नहि" की व्याप्ति की तरह इसने कुछ भी कलाएँ; के बदले या फूल की आकृति-औंगलियाँ, गुलाब के गुलदस्ते में हाथ पकड़े के समान, एक बड़े पेड़ में फैली देखीं। बचपन आ गया। यह आदत [illegible] लग गया। अब आगे पैदल चलना था, अतः उठ-कर उठने की कोशिश करने लगे। तब तो उठ गये, परन्तु एक कुत्ता के भाई साहेब नहीं उठाने चाहते थे। जब नींद से जाग कर नीचे आने के बाद पता ले के आंख मलते उठे और [illegible] की हँसी-सी आँखों को देख-पूछने लगे "कुत्ता" था। बाबू के बाद आगये! अहा, हा! उस अफीम की सी [illegible] हँस पड़े। एक कोई वैसी नाक के विशाल [illegible] से सभी आदि जवाब देती तो थे! नहीं महाशय जी, बाबू के बाल नहीं, बाबू की नक़ल के बाल आगये हैं। एक लड़के ने धीरे से चमौली लेकर जैसे आपकी जी नाक! भला कुछ जो यह गुनगुनाता उन विश्व मित्र की नक़ल था, नहीं तो इस मनमानी में [illegible] के भी 'भीगी-बिल्ली-बनना' के बा निकल पड़ा। या कोई ने कोई नाटकीय ढंग से [illegible] ही पड़ता। बस इस तरह छिपे-छिपे खिलखिला हँसने लगे थे। औपचारिकों के बाबू की नकल करने का सिलसिला

था। लेकिन इस रहस्य की [illegible] एक बार पर [illegible] जब कोई जिनके [illegible] में लोग [illegible] सके थे: [illegible] करते थे अपरा-विद्या प्राइवेट [illegible] करते थे, वे घर से विद्यालय की दीवारें आदि पर कोयले आदि से कुछ अजीब चित्रों का आविष्कार करके मनोरंजन साबित करने का प्रयत्न करते थे। जैसे ऐंठ की - इनमें इनका नाम सारे [illegible] हुआ था, तो यही [illegible] बाबू की इज़्ज़त तक होते देख कोई यह कैसे हो सकता है? नकल कैसे हो सकती हैं? बाबू देखा ही तो नक़ल का चित्र तैयार किया गया होगा। तो इसका बना चित्र बिना रेखा खींचे कैसे बन होगा? लेकिन अपनी जो छोटी-छोटी बातों में दिमाग़ लगाता था [illegible] कभी कुछ बोला न करता था। इस तरह बोलने की सूरत [illegible] बोला हाँ! ठीक तो है। [illegible] जी [illegible] तो बिना देखे के चित्र नहीं बनाते हैं, तो यह चित्र आपके मित्र जी ने बनाया होगा? अतः, ये विवाद आदि [illegible] की [illegible] तक पहुँचने की कोशिश करते थे कि एक कोई अध्यापक जी के मिल

आगमन

अभी क्या देखा कहाँ आकर हमारी "दार्शनिक मण्डली" को दूर से ही नमस्ते खींचते हुए, "हे - दयालो, क्या है पण्डित जी किधर हैं? हमने नाहर [illegible] पाल जी को [illegible] दिया। मास्टर जी ने जो पीछे - फेरे देखे को, जब मेरे [illegible] उन सिलेबसी को देखा, तो अपनी उजली मूछों को, गम्भीर मुस्कराहट से ताव को उजली करके बोले "आइये - आइये, महता जी, नमस्ते"। महता जी का नाम सुना तो हम भी सब चौंककर खड़े हो, 'नमस्ते जी - नमस्ते जी' कहने लगे। हमें बड़ी खुशी हुई।

कुरुक्षेत्र की तरफ यात्रा पर आये कांग्रेस के प्र. से हमलोग उनका नाम सुना करते थे। जैसे राम के नाम से [illegible] के लिए के नाम से लेकिन [illegible] थी। महता जी के इन पतिनायक को देखकर हमें ऐसा लगा मानो हम [illegible] आँखों के सामने इतिहास देख रहे हों "जीते जी [illegible] एक व्यक्ति का इतना आदर? ऐसे कर्मशील पुरुष को श्रद्धांजलि [illegible] तो [illegible] नमस्ते [illegible] बाद में महताजी हमको एक सुन्दर गेट पर ले गये, जहाँ - 'स्वागतम्' 'ॐ नमस्ते' की मालाओं के बीच माथे की बिन्दी के समान, टंगा -

'महताजोट' का रेन-लिंग उनका का साइन बोर्ड पड़ा। उसके दूसरी ओर टीन के छाये मकान, (जिन्हें तब हिल हाउस कहकर पुकारते थे) ऐसे छाये थे जैसे किसी महाबलशाली के विशाल बाहु! वर्षा धूप, आँधी-ओलों, भालू शेरों किसी की भी कुछ परवाह न करता वह सन्तरी महताजोट, मानो इन्हीं बलवान् भुजाओं के - पराक्रम पर और तपोवन की अहर्निश रक्षा करता, अविराम पहरा बजाता था। इस सन्तरी को प्रणाम कर हम मेहता जी के पीछे-पीछे, गुरुकुल-महाविद्यालय के पास, "अथर्व-वेदालय में इदं ओम् नामन्" वाली तरबूज कुटीर सी के पास आये, जो पुरानी, जोड़-तोड़ है जैसे कहा है कि श्री पं. सूर्यदेव जी शास्त्री शिरोमणि की झोंपड़ी थी। उसे छूते व्यायाम शाला के भवन को लाँघते, हम लोग गंगा किनारे नहीं, सम्भवतः तीन पुली की ओर निकल आये। इस तीन पुली का नाम मैं यदि "त्रासिका पुरी" दे दूँ तो भूगोल विशारद श्रीमान् मास्टर काशीराम जी आशा है क्षमा करेंगे, अपने १० जोड़ संधी हमलों के साथ न टूट पड़ें तो अच्छा, मास्टर काशीराम जी का नाम आ ही गया है तो प्रसंग स्तुति व्याजानुसार (By the way) उनकी भी सेवा-शुश्रूषा में श्रद्धा अर्पण देने ही चाहिये, उनकी स्मृतियों में बहुत सी बातें आज ऐसी भूल गई हैं जैसे उन को बिल्ली दूध मलाई चाट गई हो। हाँ, दो बातें ज़रूर याद हैं जो भुलाये भी नहीं भूलतीं, जैसे कि स्वामि दयानन्द जी की गृह त्याग-जीवन का लेखा और दक्षिणा-दान! मास्टर जी ने सारी रेल की कॉन्सपिरेसी (conspiracy) की हुई थी, ऐसा भाव "जनप्रवाद" था। कॉन्सपिरेसी इसलिये, —

क्योंकि उत्सव के वह दहाके ले मैं पंजाबी और आर्य जनता के अति प्रवर्तक वानप्रस्थी महात्मा-मुन्शीराम जी के यहाँ से-प्राप्त इन मास्टर साहब के चरणों में ही रहकर इसके अपने को कृतकृत्य हुआ जानकर बहुत बड़ा और सुखी थी। यह-दूसरी बात है ऐसी ही मामूली सी है, जैसे आज तक लोगे कभी बीलगाने मास्टर साहब अपनी उस जाति तुल्य आकृति के कारण शायद प्राणायाम का अभ्यास करते प्रदर्शित करने में लाचार थे। एक दिन अंग्रेजी के पाठ की शक्ल का संध्या-सन या वर्णोच्चारण-मारे, (जिसमें नाक का होना अनिवार्य होता है, और जिसने तम्बू का पता (हवा) ने-प्राकृति उंगली से नाक बन्द किए और प्राणायाम का अभिनय कर रहे थे। मनजाने में शायद प्राणायाम उल्टा होगया, वे विवश-होकर पृथ्वी पर माथे के बल रेंगे आते, जैसे नमाज़ पढ़ता नाजिम। नाक से खून बह निकला उस दिन से 'नकनाक' की दीक्षा की लहर उन्हें भी न जाने मुझी में क्या-कुछ घुस पड़ा कि यदि कोई विद्यार्थी भूल से भी नाक पर उंगली रखे उन्हें दीख पड़ता तो वे सौ काम छोड़ कर उसको रखो कहते हैं नाक [illegible] से बह उठे, पैदा, बाले अरे मां मैं नाक!!" [illegible] इस लिए [illegible] पर [illegible] है। उस दीन प्रति [illegible] [illegible] में [illegible] गया [illegible] [illegible] लो, किसी किसी ने [illegible] पर [illegible] जैसा [illegible] का प्रयत्न भी किया, [illegible] ही [illegible] पढ़ना [illegible] जैसा [illegible] का un-written law का है [illegible]

आज कल

है। उन सबका के साथ साह
जी, लाला जी व गुरु जी की
लीला और नेशनल में जिन्दगी
ही ले हो गया। आखिर आज़ाद
राष्ट्र में क्या देश का बदलाव नहीं
आया पड़ा। [illegible] लूट [illegible] के
बाद [illegible] अपना [illegible]
[illegible] अपनी अपनी [illegible]
पर [illegible] [illegible]
की [illegible] और [illegible]। [illegible]
[illegible] किया, जो [illegible] शुरू
किया। कोई-कोई नेता के
घोटाले का [illegible] [illegible]
“महात्मा निर्मोह: निरहंकार: [illegible]-
[illegible]” का [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]
[illegible] [illegible]. आत्मनिर्भर
प्रारम्भ किया और कोई कोई
[illegible]-[illegible] [illegible] को लेकर
पानी में फेंक-फेंक [illegible]।

जैसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] में [illegible] मूर्ति, [illegible]
जैसे प्राप्त की [illegible] उपाय,
[illegible], [illegible] में [illegible]
लिये आगम को [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] के [illegible] [illegible]
जरा और [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] के [illegible] में
[illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible]-
[illegible] के उस प्राप्ति के [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
जाने का [illegible] हुई कि
[illegible] [illegible] [illegible] से अपनी
[illegible] [illegible] का [illegible]
[illegible] [illegible] को पीने के

आमन्त्रण

लाला जी हँस पड़े।
[illegible]
मैं देवता बोले "क्यों बेटा!
कितने घर तुमने बनाये? कहाँ
तक पहुँच सकता है,
याद रखो? [illegible]
[illegible]"
[illegible] सत्कार बोले
"पं. विद्याभूषण और लाला
[illegible] कहाँ हैं।" इस
[illegible]
रखे थे, कि इतने में [illegible]
[illegible]
[illegible]
स्वयं आकर उन "यमेवैष
वृणुते तेन लभ्यः" भगवान
के चरणों में नत मस्तक झुक-
ने लगे। इस [illegible]
भगवान्, भगवान् के चरणों में
पड़ रहे हैं। इसे [illegible] समझ न पड़ी
इसलिये यह एक पहेली थी।
पीछे आकर [illegible]
तब जाना कि यह देवमूर्ति
[illegible]
थी। [illegible] कुलभूमि के अधि-
देवता थे और [illegible]
[illegible]
आज [illegible]
[illegible] - कैसा
[illegible] में तुमने कितने
घर बनाये? कुछ कहो!
[illegible] से कितने
घर बनाये?

— : भद्र भूपाल : [illegible]

गुरुकुल समाचार

गुरुकुल में मौसम बदल रहा है। दिन में कुछ २ गर्मी तथा रात में सर्दी होती है। आकाश में प्रायः बादल छाये रहते हैं। कभी २ आंधी भी आ जाती है। इस आंधी के कारण कुल का आम्रवन उजड़ सा गया है। नहर भरी हुई है परन्तु उसमें तैरना अभी प्रारम्भ नहीं हुआ; किश्ती का आनन्द ब्रह्मचारी उठा रहे हैं।

चिकित्सालय रोगियों से प्रायः खाली है। महाविद्यालय के दो ब्रह्मचारी बीमार हैं जो कि अब स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। विद्यालय विभाग के भी बहुत थोड़े ब्रह्मचारी बीमार हैं। शेष सब ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। श्री चिरञ्जीलालजी भण्डारी कुछ समय से बीमार थे अब वे भी स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं।

आगामी कार्यक्रम

गुरुकुल महाविद्यालय में वाग्वर्धिनी, संस्कृतोत्साहिनी, आयुर्वेद परिषद्, कालिज यूनियन तथा वानिविकासिनी इत्यादि सभायें कुल में विद्यमान हैं। परीक्षाओं के कारण कुछ समय से इनके साधारण अधिवेशन नहीं हुवे। वार्षिकोत्सव के अवसर पर वाग्वर्धिनी सभा की ओर से 'अन्तर्महाविद्यालय वाद विवाद सम्मेलन' की आयोजना की गई है जिसमें भिन्न 2 विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। इस के साथ ही एक 'कविता - सम्मेलन' की आयोजना की गई है। इसके साथ संस्कृतोत्साहिनी की ओर से भी संस्कृत में वाद विवाद होगा।

गुरुकुल की वार्षिक परीक्षायें समाप्त हो चुकी हैं। स्नातक परीक्षा का परिणाम शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। अन्य श्रेणियों का परिणाम भी शीघ्र ही निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इस वर्ष ब्र. देवकीर्ति जी क्रीड़ामन्त्री हैं आपने खेलों में विशेष उत्साह दिखाया है आशा है इस वर्ष क्रीड़ा में विशेष

उन्नति होगी।

परीक्षाओं की समाप्ति पर गुरुकुल के ११.१२.१३ श्रेणियों के इतिहास के विद्यार्थी श्री प्रो० सत्यकेतु जी विद्यालंकार के साथ कलकत्ता की ओर गये थे। यद्यपि समय कम था फिर भी उसका पूर्ण लाभ उठाया गया है। मार्ग में लखनऊ, कानपुर इलाहबाद, बनारस, सारनाथ, गया इत्यादि ऐतिहासिक स्थानों का अवलोकन करता हुआ यह दल कलकत्ता पहुंचा। वहां भी अनेक ऐतिहासिक स्थानों को देख कर ४ अप्रैल को प्रातः काल यह दल वापिस कुल में आ गया है। इसके अतिरिक्त इस अवसर का लाभ उठा कर ब्रह्मचारी हृषीकेश इत्यादि भ्रमण करने जाते हैं।

गुरुकुल का वार्षिकोत्सव बहुत समीप है। गत वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष उत्सव में अधिक रौनक होने की आशा की जाती है। क्योंकि उधर हरिद्वार में इन्हीं दिनों अर्धकुम्भी महोत्सव मनाया जा रहा है। श्री हृदयनाथ जी

उप[illegible]

कुंवर आजकल हरिद्वार में पधारे हुवे हैं। आपको 'गुरुकुल जन्मोत्सव' पर निमन्त्रित किया गया है आशा है आप कुल में उपस्थित होंगे। इसके अतिरिक्त महामना मालवीय जी, महाराज पटियाला तथा महाराज टिहरि भी कुम्भी के अवसर पर हरिद्वार पधारने वाले हैं। आपको भी कुल में ~~[illegible]~~ उपस्थित होने के लिये निमन्त्रित किया जायगा आशा है ये तथा अन्य महानुभाव उत्सव में उपस्थित होंगे। इस अवसर पर कई विशेष सम्मेलनों का भी प्रबन्ध किया गया है आशा है उत्सव सफलता पूर्वक मनाया जायगा।